

# बहुजन स्वराज की किताब

बहुजन स्वराज पंचायत के आयोजन  
के अवसर पर प्रकाशित  
7, 8, 9 अक्टूबर 2025

---

विद्या आश्रम  
सारनाथ, वाराणसी-221007

---

# बहुजन स्वराज की किताब

बहुजन स्वराज पंचायत, वाराणसी  
7, 8, 9 अक्टूबर 2025  
के आयोजन के अवसर पर प्रकाशित

विद्या आश्रम  
सा 10/82 ए, अशोक मार्ग,  
सारनाथ, वाराणसी-221007

पुस्तक का नाम : बहुजन स्वराज की किताब

प्रकाशन वर्ष : अक्टूबर 2025

सहयोग राशि : रुपये 100.00 मात्र

प्रकाशक : लोकविद्या जन आन्दोलन के लिए विद्या आश्रम की ओर से  
समन्वयक डा. चित्रा सहस्रबुद्धे द्वारा सम्पादित और प्रकाशित

संपर्क :

- पता : विद्या आश्रम  
सा 10/82 ए, अशोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी-221007
- मोबाइल : 9839275124
- ई-मेल : vidyaashram@gmail
- वेबसाइट : vidyaashram.org
- ब्लॉग : lokavidyajanandolan.blogspot.com
- फेसबुक समूह : Knowledge Dialogues in Society

डिज़ाइन एवं टाइप सेटिंग : दीनानाथ चौबे

मुद्रक : सत्तनाम प्रिंटर्स  
नई बस्ती, पाण्डेयपुर, वाराणसी-221002

## पुस्तक के बारे में

यह पुस्तक बहुजन-समाज की शक्ति के स्रोतों की खोज और उनके पुनरुज्जीवन एवं नवीनीकरण के उद्देश्य से प्रस्तुत है।

बहुजन यानि सामान्य लोग या आम लोग. इनका जीवन सामान्य जीवन कहलाता है. सामान्य जीवन यानि जहाँ जीवन के किसी भी पक्ष में बहुत अधिक ऊँच-नीच या अंतर नहीं होता. कोई बहुत अमीर और कोई बहुत गरीब नहीं होता, कोई बहुत गलत और कोई एकदम सही नहीं होता, कोई बहुत ज्ञानी और कोई एकदम अज्ञानी नहीं होता.

यह पुस्तक पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर सामान्य जन यानि बहुजन-समाज की पहचान, उनकी विरासत, ज्ञान, जीवनमूल्य, समाज संगठन के प्रकार आदि पर विचार का आग्रह करती है. निश्चित ही यह कार्य बहुजन-समाज की शक्तियों के पुनर्संगठन के साथ ही हो सकता है, जिसका लक्ष्य युद्ध, गैर-बराबरी, लूट और पर्यावरण विनाश जैसे महासंकटों से मुक्ति के साथ एक न्याय और भाईचारे पर आधारित दुनिया के निर्माण में हो.

आज की दुनिया के कुछ महासंकटों का प्रमुख स्रोत आधुनिक राज्य, साइंस और पूँजी के आपसी गठबंधन और एकाधिकार में हैं. ये लगभग एक साथ आये थे और अब इनके एक साथ जाने में ही दुनिया की भलाई है. आज दुनिया के सामने ऊपर उल्लिखित महासंकटों से उबारने वाले समकालीन जीवन दर्शन और व्यवस्थाओं का बोध उपरोक्त तिकड़ी में खोजना व्यर्थ होगा. इसका बोध सामान्य जन की पहल और पुनर्संगठन के मार्फत ही संभव है.

वाराणसी में सारनाथ स्थित विद्या आश्रम के परिसर पर 7,8,9 अक्टूबर 2025 को तीन दिवसीय 'बहुजन स्वराज पंचायत' के आयोजन की तैयारी में यह पुस्तक



बनाई गई है. इस पंचायत की घोषणा/निमंत्रण इस पुस्तक में दी गई है. यह 'बहुजन' और 'स्वराज' पर एक बहुआयामी ज्ञान-संवाद/विमर्श के उद्घाटन का आयोजन है.

नई तकनीकी और कृत्रिम प्रज्ञा के चलते भारत में और वैश्विक पटल पर भी, बहुजन-समाज को बहिष्कृत करने वाली क्रियाओं में तेज़ी आई है. पुस्तक में शामिल लेख इस सन्दर्भ से बहुजन-समाज की शक्ति की चर्चा करते हैं. लेखों को चार भागों में रखा गया है, जो क्रमशः बहुजन-समाज, स्वराज, समाज सृजन के कला मार्ग और बहुजन ज्ञान विमर्श (शोध कार्यक्रम) के नाम से हैं.

बहुजन स्वराज पंचायत की तैयारी में वाराणसी ज्ञान पंचायत की पत्रिका 'सुर साधना' के अंक 8, सितम्बर-अक्टूबर 2025, में प्रकाशित लेखों को भी इस पुस्तक में शामिल किया गया है.

आशा करते हैं कि बहुजन स्वराज की किताब एक लोकोन्मुख, लोकहितकारी और लोक पहल के समाज संगठन के विचार और कार्यों के मार्ग प्रशस्त करेगी.

**-संपादक**

## विषय सूची

1. पुस्तक के बारे में	3
2. प्रस्तावना	7
3. बहुजन स्वराज पंचायत की घोषणा और निमंत्रण	10

### भाग एक : बहुजन-समाज 13-44

4. बहुजन-समाज में स्वराज की बुनियाद	- प्रेमलता सिंह	14
5. बहुजन समाज के ज्ञान में स्वाधीन भारत की पहचान	- पारमिता	15
6. 'समता मूलक समाज' की स्थापना में 'बहुजन एकता' की भूमिका	- राजेंद्र प्रसाद मानव	20
7. वर्तमान व्यवस्था में बहुजन किसान	- विजय जवांधिया	22
8. हम जनता नहीं हैं, हमें बहुजन-समाज कहो.	- फ़ज़लुर्रहमान अंसारी	25
9. विमुक्त घुमंतू जनजातियों का सवाल	- हरिश्चंद्र केवट	27
10. पूंजीवादी व्यवस्था में बहुजन-समाज	- रामजी सिंह	30
11. हाट व स्थानीय बाज़ार बहुजन-समाज के ज्ञानपुंज	- संजीव दाजी	33
12. समाजों के नाम और राजनीतिक दृष्टि	- सम्पादक	37
13. बहुसंकट और बहुजन-समाज	- अमित बसोले	39
14. दुनिया के बहुजन-समाज एक हो	- रामजनम	42

### भाग दो : स्वराज 45-76

15. स्वराज यानि समाज-राज्य	- अरुण कुमार	46
16. बहुजन और स्वराज	- कृष्ण गाँधी	48
17. बहुजन स्वराज और चुनौतियाँ	- रामदुलार	52
18. सभ्यतागत राज्य और बहुजन स्वराज	- गिरीश सहस्रबुद्धे	55
19. लोकतंत्र और 'लोक का तंत्र'	- लक्ष्मण प्रसाद	62

20. भारत की ऊर्जा-हसरतें और स्वराज	- एकता और रविशेखर	65
21. बहुजन-समाज की चेतना का स्वरूप	- सुनील सहस्रबुद्धे	69
22. स्वराज : प्रासंगिक, आदर्श विचार और व्यवस्था	- लक्ष्मण प्रसाद	73

### भाग तीन : समाज सृजन का कला मार्ग 77-90

23. ओ कलाकार! सुनते हो? (कविता)	- संजीव दाजी	78
24. स्वराज चेतना का एक स्रोत कलाकर्म है	- चित्रा सहस्रबुद्धे	80
25. क्या लिखूं? (कविता)	- नूर फ़ात्मा	84
26. परजुनियां (कहानी)	- रामजी यादव	86

### भाग चार : बहुजन ज्ञान विमर्श 91-136

27. विद्या आश्रम शोध प्रस्ताव	- विद्या आश्रम समूह	92
28. लोकविद्या डिबेट्स ग्रुप की ऑनलाइन बैठकें	- गिरीश सहस्रबुद्धे	103
29. स्वराज की ज्ञान दृष्टि	- अविनाश झा	106
30. बहुजन-समाज की राज परम्परायें, 'स्वराज' हैं	- चित्रा सहस्रबुद्धे	110
31. बहुजन-समाज एवं स्वराज्य	- बी. कृष्णराजुलु	122
32. चेंगलपेट दस्तावेज	- जी. शिवराम कृष्णन	129
33. लेखक परिचय		135

## प्रस्तावना

बहुजन-समाज के जीवन और जीवनमूल्यों को दर्शन की परंपराओं के रूप में समझा जाये तो 'बहुजन-समाज' एक दृष्टा, कर्ता, ज्ञानी व पहल की क्षमताओं के विशाल भण्डार के रूप में दिखाई देता है। भारत जैसे देशों में स्थान और काल अनुसार यह हर युग में न्याय और भाईचारे पर आधारित जीवन संगठनों को आकार देने की शक्ति संजोये हुए मिलेगा। तब बहुजन-समाज जातियों में बंटा नहीं, बल्कि विविध समाजों से बना दिखाई देगा। ऐसे समाजों से, जो एक दूसरे के साथ रहना पसंद करते हैं और अपने रिश्तों को अधिक सघन करते जाने के जीवन संगठन, दर्शन और जीवनमूल्यों को गढ़ना भी जानते हैं। कुल मिलाकर बात यह है कि बहुजन-समाज ज्ञानी समाज है और उनके ज्ञान के बल पर इस देश की सभ्यता बनी और ज़िन्दा है। सवाल उठता है कि वे अज्ञानी कैसे कहे जा सकते हैं? उनका ज्ञान कैसा ज्ञान है? यह आधुनिक ज्ञान यानि साइंस से किस अर्थ में भिन्न है? उसमें निहित तर्क, मूल्य और सत्ता का प्रकार क्या है?

जैसे-जैसे बहुजन-समाज सार्वजनिक दुनिया में अपनी भागीदारी बढ़ाता जा रहा है, वैसे-वैसे एक तरफ नई तकनीकी और निजीकरण के सहारे उसे बहिष्कृत करने की प्रक्रियाओं में तेज़ी आई है और दूसरी तरफ समाज को शोषणमुक्त बनाने की उम्मीदें फिर से बड़े पैमाने पर जागृत हो रही हैं। अबकी बार रास्ते की खोज की ज्ञान मीमांसा और तत्व मीमांसा अपनी होगी, लोकविद्या पर आधारित होगी, आयातित नहीं होगी। अबकी बार स्वराज की व्याख्या बहुजन-समाज करेगा, विशिष्टजन सुनेंगे। दुनिया भर में एक ऐसी लहर है, जो इस नई उम्मीद का व्यापक सन्दर्भ बनती है। यह पुस्तक इन्हीं बातों को बहुआयामी तर्कों के साथ पेश करती है। बहुजन-समाज के तर्क भावप्रधान होते हैं, कलाप्रधान होते हैं, नीति-सापेक्ष होते हैं। इन्हीं के मार्फत वे सत्य को उजागर करते हैं और अब दुनिया को वर्तमान संकटों से मुक्ति का रास्ता बताने की कगार पर हैं।

पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षों में औद्योगिक विकास और अब सूचना-संचार के विकास के नाम पर इस देश के बहुजन-समाज को निरंतर देश की मुख्य धारा से बाहर करने की नीतियाँ बनती रही हैं. हमारे ही देश में नहीं बल्कि यह स्थिति दुनिया के कई देशों में हैं. सत्ता चाहे समाजवादी, डेमोक्रेटिक या दक्षिणपंथी हो, सभी राजनीतिक दल बहुजन-समाज को बाहर करने वाली नीतियों पर सहमत दिखाई देते हैं. पहले मशीनीकरण और बड़े उद्योगों के बल पर करोड़ों लोगों को बाहर किया और अब कम्प्यूटर-इंटरनेट व कृत्रिम बुद्धि तथा शिक्षा और बाजारों के पुनर्संगठन के बल पर यह किया जा रहा है.. ऐसा करने में बर्बर युद्ध, हिंसा और प्राकृतिक विनाश के लम्बे दौर चले, जो अब बहुत तेज़ हो चुके हैं. राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक नीतियों के प्रतिरोध और विरोध में बहुजन-समाज ने भी अनेक प्रयत्न किये लेकिन राजसत्ताओं के झूठ, अन्याय और हिंसा पर आधारित चरित्र में बदलाव नहीं आ पाया है.

ऐसे में समाज-संगठन, राज्यसत्ता, समाज, व्यक्ति आदि की ज़िम्मेदारियों और कर्तव्यों आदि से सम्बंधित सवाल मुखर हो उठे हैं. लेकिन मुश्किल यह है कि यूरोप से आये विचारों और शिक्षा के जरिये जब इन सवालों पर चिंतन होता है तो बहुजन-समाज बहुधा अनपढ़, अज्ञानी, अन्धविश्वासी और जातियों में बंटा नज़र आता है. और जाने-अनजाने आधुनिक ज्ञान-सत्ता-तर्क-मूल्य के बल पर बनी हिंसक और अन्यायी प्रवृत्तियों को अपनाने अथवा इनसे निर्मित व्यवस्थाओं में रास्ता खोजने के प्रयास होने लगते हैं.

तो फिर समाज में न्याय की स्थापना यानि बहुजन-समाज को दुनिया में प्रतिष्ठित और सम्मानपूर्ण स्थान हासिल करने की क्रियाओं की पहचान और पहल कैसे हो?

यह पुस्तक इन्हीं सवालों के जवाब हासिल करने की कोशिश करती है. खोज यह है कि बहुजन-समाज की यानि सामान्य जन की शक्ति के स्रोत कहाँ-कहाँ हैं और इनके बल पर वह नई दुनिया बनाने के लिए कैसे बढ़े. वर्तमान दुनिया पूँजी-साइंस-आधुनिक राज्यसत्ता के मज़बूत गठबंधन पर खड़ी की गई है, इनसे भिन्न वे कौन से

बुनियादी शक्ति के स्रोत हो सकते हैं, जिनके बल पर बहुजन-समाज सबकी खुशहाली, सबके लिए न्याय और सम्मान की दुनिया बनाने की पहल लेगा?

इस विषय पर दक्षिण अमेरिका में इक्वाडोर और बोलीविया देशों के मूल निवासियों की पहल का उल्लेख महत्वपूर्ण है। इन देशों में **बहुराष्ट्रीय-राज्य (प्लूरिनेशनल-स्टेट)** की एक नई अवधारणा अस्तित्व में आई, जिसमें देश को बनाने वाले विभिन्न समाजों की स्वायत्तता, संस्कृति और आपसी बराबरी को बुनियादी स्थान मिला। उसके हिसाब से इन्होंने अपने ज्ञान (लोकविद्या) के बल पर राष्ट्र का संविधान बनाने की पहल ली। हम मानते हैं कि यह घटना दुनिया भर के बहुजन-समाजों के लिए प्रेरणा का स्रोत है।

दूसरी तरफ गत कुछ वर्षों से कई देशों में नवरूढ़िवादियों (नियो कंज़र्वेटिव) की सरकारें बनीं और उन्होंने **राष्ट्र-राज्य (नेशन-स्टेट)** और **उदार लोकतंत्र (लिबरल डेमोक्रेसी)** को समस्याजनक बताते हुए, **सभ्यतागत-राज्य (सिविलिज़ेशनल-स्टेट)** की नई परिकल्पना तैयार की। **भारत के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद (कल्चरल नेशनलिस्म)** वालों को यह बात पसंद आई।

बहुजन-समाज के सामने यह एक ऐतिहासिक मौका है, जब वह अपने ज्ञान, तर्क और जीवनमूल्यों के बल पर अपनी सत्ता विषयक स्थापनाओं, तथ्यों और अनुभवों को सार्वजनिक करे। यानि अपने ज्ञान, विरासत, जीवन मूल्य, लोकस्मृति, आदि की परम्पराओं का दावा पेश करे। यह दावा नये बन रहे साम्राज्यवादी विचारों-व्यवस्थाओं को न केवल चुनौती दे सकेगा, बल्कि बहुजन-स्वराज की एक समकालीन अवधारणा पेश करेगा।

**-संपादक**

## निमंत्रण/घोषणा

बहुजन स्वराज पंचायत

7-8-9 अक्टूबर 2025, विद्या आश्रम, सारनाथ, वाराणसी

विषय : बहुजन की पहल पर स्वराज निर्माण

सामान्य जन-जीवन की बदहाल अवस्था के प्रति सत्ता के विचार और व्यवस्था की उत्तरदायित्वहीनता आज का सबसे बड़ा संकट है। दुनिया भर में लोकविद्या-समाज के लोग यानि किसान, कारीगर, आदिवासी समाज, महिलाएं, लोककलाकार और छोटी दुकानदारी अथवा सेवाकार्य करने वाले तमाम समाजों में व्याकुलता नज़र आती है। अपने अधिकारों के लिए उनके बड़े-बड़े आन्दोलन और संघर्ष भी सत्ता के चरित्र में कोई बदलाव नहीं ला पा रहे हैं। 20वीं सदी के राष्ट्र और राज्य के विचार और व्यवस्थाओं में अब कोई आशा और ऊर्जा दिखाई नहीं दे रही है।

ऐसे में पिछले कुछ समय से वैश्विक पैमाने पर राष्ट्र और राज्य की कल्पनाओं पर नई बहस आकार लेती रही है। इस बहस के दो छोर दिखाई दे रहे हैं। एक छोर की शुरुआत दक्षिण अमेरिका में इक्वाडोर और बोलीविया देशों के मूल निवासियों की नई राजनीति के उदय से हुई है। इन देशों में बहुराष्ट्रीय-राज्य (प्लूरिनेशनल-स्टेट) की एक नई अवधारणा अस्तित्व में आई और उसके हिसाब से इन्होंने अपने ज्ञान (लोकविद्या) के बल पर राष्ट्र का संविधान बनाने की पहल ली। हम मानते हैं कि यह घटना दुनिया भर के बहुजन-समाजों के लिए प्रेरणा का स्रोत है।

इसके कुछ ही वर्षों बाद कई देशों में नवरूढ़िवादियों (नियो कंज़र्वेटिव) की सरकारें बनने के चलते इस बहस का दूसरा छोर आकार लेने लगा और बड़ी तेज़ी से फैलता गया। दूसरे छोर पर जिन विचारों के इर्द-गिर्द ये बहस फैलने लगी उनमें सभ्यतागत-राज्य (सिविलिज़ेशनल-स्टेट), राष्ट्र-राज्य (नेशन-स्टेट), उदार लोकतंत्र (लिबरल डेमोक्रेसी), सांस्कृतिक राष्ट्रवाद (कल्चरल नेशनलिज़्म) प्रमुख हैं। बहस का यह दूसरा छोर जिन देशों की पहल पर ज़िंदा है उनके शासक वर्ग बुनियादी तौर पर साम्राज्यवादी मंशा और विचारों के पैरोकार हैं।

हमारा मानना है कि इस वैश्विक बहस में 'स्वराज' को ले आने की पहल करनी चाहिए. 'स्वराज' यह बहुजन-समाज के विचार और परम्परा का हिस्सा है. भारत के किसान आन्दोलन के लम्बे दौर में हम स्वराज की परंपराओं की स्पष्ट झलक देख चुके हैं. 'न्याय, त्याग और भाईचारा' के नारे व मूल्य में उनकी दृढ़ निष्ठा के नतीजों का असर भी देख चुके हैं.

इस बहस से स्वराज के नाम पर एक नई और लोकोन्मुख राजनीति के उदय की संभावना बनती दिखाई देती है. इन सन्दर्भों में बहुजन-समाज अपने दर्शन व राज परम्पराओं के सिलसिले में आज क्या कहना चाह सकता है? विद्या आश्रम, सारनाथ में 7,8,9 अक्तूबर 2025 को होने वाली बहुजन स्वराज पंचायत इसी उद्देश्य से आयोजित है. यह 'बहुजन' और 'स्वराज' पर एक बहुआयामी ज्ञान संवाद/विमर्श के आयोजन का प्रस्ताव है, जिसमें उपरोक्त प्रश्नों के सन्दर्भ में विविध वैचारिक कोणों से विचार किया जायेगा. आप अवश्य आयें.

### कार्यक्रम

#### पहला दिन : बहुजन ज्ञान विमर्श

- बहुजन की पहचान
- बहुजन-समाज का दर्शन - न्याय, त्याग और भाईचारे की परम्परार्यें
- बहुजन की राजनीतिक और आर्थिक विरासत
- बहुजन सशक्तिकरण में आरक्षण की भूमिका
- बहुजन की शक्ति का ज्ञान आधार- लोकविद्या
- बहुजन की व्यवस्था और विधि की सोच में पंचायत का स्थान

#### दूसरा दिन : स्वराज ज्ञान पंचायत

- क्या सामाजिक न्याय आन्दोलन का लक्ष्य स्वराज हो सकता है?
- क्या कबीर की अमरपुरी, रविदास के बेगमपुरा, बसवेश्वर के कल्याणपुरी के मूल्य स्वराज में आकार ले सकते हैं?
- क्या व्यापक बहुजन चेतना 'स्वराज चेतना' है?



- आज स्वराज की ओर बढ़ने में साहित्य और कला की भूमिका
- स्वायत्तता, स्थानीय बाज़ार, स्थानीय स्वशासन, लोकपहल और लोकविद्या की स्वराज में भूमिका
- क्या स्वराज तरह-तरह की पंचायतों का नेटवर्क है?

### तीसरा दिन : प्रस्ताव

दो दिन हुई चर्चाओं को समाहित करते हुए एक वक्तव्य पेश हो. उस पर चर्चा हो. क्या बहुजन और स्वराज पर किया गया यह ज्ञान-संवाद/विमर्श हमें स्वराज पंचायत के नाम पर आगे बढ़ने का आधार देता है? यदि हाँ, तो उस प्रक्रिया पर बात हो और एक ठोस निर्णय पर पहुँचने का प्रयास हो.

### आयोजक

लोकविद्या जन आन्दोलन (चित्रा सहस्रबुद्धे 9838944822), भारतीय किसान यूनियन वाराणसी (लक्ष्मण प्रसाद 9026219913), स्वराज अभियान (रामजनम 8765619982), बुनकर साझा मंच (फ़ज़लुर्रहमान अंसारी 7905245553), माँ गंगा निषाद सेवा समिति (हरिश्चंद्र केवट 9555744251), गाँव के लोग (रामजी यादव 9689150846), कारीगर नजरिया (प्रेमलता सिंह 9519854478), कमलेश कुमार राजभर (7843916011), किसान न्याय मोर्चा (राजेंद्र मानव 9451572981), लोकविद्या समन्वय समूह, इंदौर (संजीव दाजी 9926426858), लोकविद्या समन्वय समूह, ग्राम भकलाय, इंदौर (घनश्याम भाई भाबर)

### विद्या आश्रम व्यवस्था संपर्क :

लक्ष्मण प्रसाद (9026219913)  
कमलेश कुमार राजभर (784391601)

## भाग एक : बहुजन-समाज

## बहुजन-समाज में स्वराज की बुनियाद

-प्रेमलता सिंह

'बहुजन' शब्द प्राचीन और प्रमाणिक है। पाली भाषा के बौद्ध ग्रंथों में यह शब्द प्रायः मिलता है। गौतम बुद्ध ने बहुजन शब्द का प्रयोग किया है। बहुजन यानि समान्य जन, जिनमें विविध जीन्स उपजाने वाले किसान, विभिन्न तरह की कारीगरी करने वाले कारीगर, सीमित संसाधनों से उद्योग करने वाले उद्यमी और दुकानदार, महिलायें, वन और वनों की मिट्टी-हवा-पानी व ढलान तथा वनस्पतियों-वृक्षों के गुणों को जानने व उनकी रक्षा करने वाले आदिवासी एवं सेवा कार्य करने वाले नाई, धोबी इत्यादि जन शामिल हैं। इनके अपने अपने समाज हैं और इनकी अपनी विद्या (लोकविद्या) और अपने जीवन मूल्य हैं। इन सभी छोटे-छोटे समाजों के समुच्चय से व्यापक बहुजन-समाज बनता है। इसे हम लोकविद्या-समाज भी कहते हैं।

इन लघु समाजों के परस्पर आर्थिक, सांस्कृतिक और न्यायिक संबंध हैं। इन संबंधों के अपने गुण-मूल्य हैं, जिनमें त्याग और भाईचारा सर्व प्रमुख है। इससे ही समग्र समाज क्रियात्मक रूप से गतिमान हो न्याय और समृद्धि की ओर बढ़ता है।

आधुनिक व्यवस्थायें, (शिक्षा, न्याय, पूंजी के केंद्रीयकरण) बहुजन-समाज की विद्या(लोकविद्या) को छीन लेने के साथ-साथ उनके ज्ञान, कौशल और मूल्यों को छिन्न भिन्न कर तिरस्कृत करने का काम करती हैं। परिणामतः समाज में विश्रृंखलता आती है। परंतु बहुजन-समाज के दर्शन में तिरस्कार की भाषा नहीं है। बहुजन-समाज में विविधता के साथ सहजीवन, संवाद और समाधान की मजबूत परंपरा आज भी है और नित नूतनता तथा परिमार्जन की गुण-प्रवृत्ति है।

बहुजन दर्शन एकाधिकार एवम् केंद्रीयकरण के तिलिस्म को सिरे से खारिज करता है क्योंकि स्वायत्तता इसकी प्रकृति है और साथ ही कसौटी भी है। स्वराज की समकालीन बुनियाद यहीं से जनम लेती रही है।



## बहुजन-समाज के ज्ञान (लोकविद्या) की प्रतिष्ठा ही स्वाधीन भारत की पहचान

-पारमिता

बहुजन-समाज अपने ज्ञान, हुनर के बल पर अपना, अपने परिवार का भरण, पोषण करने के साथ-साथ समाज की भी जरूरतों को पूरा करने वाला समाज है। इसमें खेती /पशुपालन का ज्ञान रखने वाला किसान, वस्त्र उद्योग में लगा बुनकर, लोहा, मिट्टी, लकड़ी, चमड़ा तथा पत्थर को तराशना वाला कारीगर, जल, जंगल, पहाड़ की समझ रखने वाला मल्लाह और आदिवासी, ये सब आते हैं जो अपने ज्ञान, हुनर, धैर्य और प्रेम से इस समाज को ऊर्जा देते हैं। इनके अलावा परिवार तथा समाज का संचालन करने वाला पूरा स्त्री-समाज यानि इस देश की आधी आबादी, बहुजन-समाज के महत्वपूर्ण अंग के रूप में पहचाना जाता है।

ऐतिहासिक समय से खास(विशेष)जन का जीवन इन्हीं बहुजन-समाजों के हुनर और ज्ञान के बल पर चलता रहा है। बहुजन-समाज की निर्भरता खास जन पर नहीं टिकी थी। लेकिन खासजन की निर्भरता बहुजन-समाज पर टिकी थी। बहुजन-समाज की संस्कृति परस्पर सहयोग और भाईचारे पर टिकी थी।

बहुजन-समाज में आपस में जाति और धर्म के नाम पर कोई भेदभाव नहीं था। भेदभाव का सारा खेल खासजन के द्वारा ही किया जाता था। उदाहरण के लिये हिन्दुस्तान के इतिहास में जो संत आन्दोलन हुए उनमें बड़ी संख्या में बहुजन-समाजों से निकले संत थे। जैसे कबीर कपड़ा बुनने, रविदास चमड़े का काम, महाराष्ट्र के संत नामदेव दर्जी का काम करते थे। ऐसे ही दक्षिण भारत में भी जो संत हुए वे ज्यादातर बहुजन-समाज के थे। उनको मानने वाले सभी जाति के लोग थे। उत्तर भारत में जो नाथ पंथ की परम्परा थी उसमें भी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जोगी होते थे। इतिहास की पुस्तकों में इन संतों को झूठे ही ब्राह्मण बताने की कोशिश रही है।

यह भी ऐतिहासिक तथ्य है कि भारत का बहुजन-समाज अपनी जरूरतों को पूरा करने के काम आपसी सहयोग से वस्तु विनिमय के द्वारा करता था। इनकी सारी जरूरतें स्थानीयस्तर पर पूरी हो जाती थी, बाजार या दूर-दराज के सामानों पर इनकी निर्भरता नहीं थी। अंगरेजी काल में बहुजन-समाज की इस आत्मनिर्भरता को तोड़ा गया। विभिन्न प्रकार के नियम-कानून बनाकर खेती तथा दस्तकारी पर अंकुश लगाया गया, जिसके कारण बहुजन-समाज की आत्मनिर्भरता और परस्पर सहयोग का उनका जो तरीका था उसमें बाधा आई।

आजादी के बाद भी विकास और आधुनिक शिक्षा के नाम पर लगातार यह बताया गया कि बहुजन-समाज जो काम करता है, वह 'हीन' है। अंगरेजी सत्ता का विरोध करते हुए गांधी ने भारतीय जनमानस को अंगरेजों द्वारा आरोपित हीनता की भावना से निकाल श्रेष्ठता और आत्मसम्मान का बोध पैदा किया। हिन्दुस्तान को पराधीन समाज से स्वाधीन समाज की दिशा में बदलने का काम किया। आजादी के बाद पश्चिम से आई विकास और शिक्षा की दृष्टि ने पुनः बहुजन-समाज के अंदर हीनता का भाव पैदा कर दिया। बहुजन-समाज जो काम करता है उसका ज्ञान भी उसके पास है, अगर उसके ज्ञान को सम्मान नहीं है, तो इसका अर्थ बहुजन-समाज की पहचान को नकारा जा रहा है।

एक तरफ सामाजिक बराबरी के विचार के तहत 'जाति तोड़ो' जैसे आंदोलनों मार्फत बहुजन-समाज के कुछ लोगों ने अपने नाम के आगे जाति सूचक शब्द लगाना छोड़ा तो कुछ लोगों ने सवर्ण जातियों के नाम अपने नाम के आगे लगाना शुरू किया। दूसरी तरफ राजनैतिक भागीदारी से बहुजन-समाज अपनी मजबूत पहचान बना सकता है इस सोच के तहत 1970-80 के बाद देश में जो राजनैतिक बदलाव आया उसने बहुजन-समाज की सामाजिक पहचान को राजनीतिक बनाने का काम जरूर किया। लेकिन उनकी राजनैतिक भागीदारी ने सत्ता के चरित्र में कोई मौलिक बदलाव की पहल नहीं शुरू की। नतीजा लम्बे समय के लिए प्रभावकारी न हो सका, बहुजन-समाज के पास जो ज्ञान है उसको प्रतिष्ठा देना ही असली सम्मान है।

वर्तमान व्यवस्था को संचालित करने में बहुजन-समाज के पास जो ज्ञान है उसकी बहुत बड़ी हिस्सेदारी है, लेकिन उस हिस्सेदारी का न्यायसंगत मूल्य उन्हें नहीं मिल पा रहा है। स्वाधीन मानस का हिन्दुस्तान बनाने के लिए जो बहुजन-समाज है, उसके ज्ञान के साथ न्याय करना पड़ेगा। बहुजन-समाज के ज्ञान और श्रम को इस व्यवस्था में बराबरी की हिस्सेदारी मिलनी चाहिए। जब तक वह हिस्सेदारी नहीं मिलती तब तक बहुजन-समाज के द्वारा लड़े गये संघर्ष की भी न्यायसंगत परिणति नहीं हो सकती।

### **बहुजन की विद्या, लोकविद्या में ही 21वीं सदी के स्वराज का आधार**

लोकविद्या से धनी बहुजन-समाज अपनी विद्या, समझ और परस्पर ज्ञान वार्ता के माध्यम से परंपरागत ज्ञान के साथ-साथ आधुनिक तकनीकी ज्ञान को भी सीखने और उसका शोधन करने में माहिर है। वर्तमान समय में तमाम गाड़ियों के मिस्त्री, कल-कारखानों के मिस्त्री, लैपटॉप, मोबाइल, बिजली, प्लंबिंग और घरेलू उपकरण जैसे फ्रिज, मिक्सी ऐसे तमाम आधुनिक उपकरण हैं, जिनको बनाना और चलाना ये जानते हैं। यह ज्ञान किसी संस्थान से डिग्री प्राप्त करके नहीं अपितु परस्पर ज्ञान वार्ता और काम करते हुए सीखते हैं।

देश और समाज में लगातार बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। उसका प्रमुख कारण रोजगार देने का बड़ा आधार जिस विद्या के पास है, उस विद्या की चेतना की लगातार अवहेलना की जा रही है। इस विद्या में लगे लोगों की सम्मान के साथ न्याय पूर्ण आमदनी होने लगे तो इस विद्या में आधुनिक शिक्षण, वितरण, प्रबंधन संस्थान की अपेक्षा बहुत ज्यादा लोगों को सम्मानजनक जीवन जीने देने का रास्ता है। सम्मान और न्याय संगत मूल्य नहीं मिल पाने के कारण नौजवान अपना भविष्य कहीं नहीं तलाश पा रहा। जिसके कारण भयानक बेरोजगारी और अराजकता का जन्म हो रहा है। आधुनिक शिक्षा को ही ज्ञान और समझदारी का माध्यम माना गया।

आधुनिक शिक्षा में व्यक्ति जितने सम्मानजनक संस्थान से जितनी बड़ी डिग्री लेता है वह उतना बुद्धिमान और समझदार माना जाता है। वह उस डिग्री और ज्ञान का लाभ पूरे समाज को कितना दे पा रहा है, इस विषय पर कभी कोई चर्चा नहीं होती। जो समाज अपने बुद्धि, विद्या और आपसी समझ के आधार पर पूरे समाज का भरण पोषण कर रहा है, उसे और उसके ज्ञान को 'गंवार' माना जाता है। क्योंकि वह उस ज्ञान को सैद्धांतिक जामा नहीं पहना सकता, लेकिन वह उस ज्ञान को व्यवहारिक स्वरूप में उतार सकता है। यह बहुत हास्यास्पद स्थिति है कि जो ज्ञान कागज और कंप्यूटर पर उतारा जाए वह महान है और जिस ज्ञान के आधार पर व्यावहारिक स्तर पर जीवन जिया जा रहा है वह 'गंवार' है। ऐसी मानसिकता पर हिंदुस्तान के समाज का निर्माण हो रहा है। ऐसी नीति अंग्रेजों ने अपनाई थी क्योंकि उनको हमारे देश पर राज करना था इसलिए हमको और हमारी विद्या को 'गंवार' सिद्ध करना उनके लिए जरूरी था। लेकिन आजाद भारत का निर्माण भी इसी मानसिकता के आधार पर हुआ। यह तो हिंदुस्तान और उसकी बहुसंख्य आबादी के साथ अन्याय है।

लोकविद्या से संपन्न बहुजन समाज को किसी जातिगत ढांचे में नहीं देख सकते। जाति ने इनकी विद्या और पहचान को कमजोर करने का काम किया। जैसे किसान किसी जाति से बंधा हुआ नहीं है। बुनकारी का काम भी जाति और धर्म के पहचान से नहीं है। ऐसे ही तमाम प्रकार के आधुनिक व्यवस्था में, अपने ज्ञान के बल पर समायोजित बहुजन-समाज के लोग किसी भी विशेष जातिगत पहचान से नहीं जुड़े हुए हैं। लेकिन आधुनिक ढांचे ने बहुजन-समाज को जातियों में बांट रखा है। बहुजन-समाज भी इस जातिगत बेड़ी से मुक्त होकर नहीं सोच पा रहा है। विविध समाजों की और उनके ज्ञान की उत्कृष्टता जातिगत संघर्ष में नहीं, अपितु उनकी विद्या को न्याय संगत मान और मूल्य मिले इस मुद्दे पर संघर्ष में है। यह संघर्ष सिर्फ बहुजन-समाज का ही नहीं अपितु हिंदुस्तान की नई व्यवस्था और ढांचे का है। आजादी मिलने से हमारा मानस आजाद नहीं हुआ। हमारा मानस आज भी औपनिवेशिक दृष्टि से ही सोचता है, तभी तो प्रतिष्ठित आधुनिक ज्ञान और विद्या, बहुजन समाज के विद्या का

शोषण ही करती है। यह पूरी व्यवस्था बहुजन समाज के ज्ञान और उसके श्रम के शोषण पर टिकी है। इस शोषण के खिलाफ और न्यायसंगत मूल्य के लिए किसान समाज ने लगातार आन्दोलन किया।

आज पूरी व्यवस्था जिस मकड़जाल में फँस गई है, उससे निकलने का रास्ता नहीं दिख रहा। सरकार और व्यवस्था की तरफ से समय, समय पर स्वदेशी की बातें होती रही है। स्वदेशी का रास्ता बहुजन-समाज के ज्ञान को प्रतिष्ठा देने से ही खुलता है। स्वदेशी, स्वावलम्बन और बहुजन-समाज के ज्ञान की प्रतिष्ठा के आधार पर ही स्वराज का निर्माण हो सकता है। यानि ऐसा राज, जो हाशिए पर खड़े बहुजन के हित का हो। बहुजन-समाज का हित उसकी विद्या को सम्मान और न्यायसंगत मूल्य हासिल किये बिना सम्भव नहीं है।





## ‘समता मूलक समाज’ की स्थापना में ‘बहुजन एकता’ की भूमिका

- राजेंद्र प्रसाद मानव

प्रकृति प्रदत्त सृष्टि संरचना में सभी मनुष्य बराबर हैं। प्रकृति ने बिना भेदभाव किये पानी, हवा, प्रकाश, सुगंध इत्यादि सभी को दिया है। प्रकृति का यह गुण हम सभी मनुष्यों के लिए प्रेरणादायक है। मनुष्य का जीवन संस्कृति, सभ्यता, कला, दर्शन इत्यादि ज्ञान से भरा हुआ है। समाज में जितने भी मनुष्य हैं, उनके पास किसी न किसी तरह का ज्ञान है। सभी को मिलाकर बहुजन-समाज बनता है। बहुजन की एकता में ही समता मूलक समाज का सूत्र छिपा हुआ है। समाज में समभाव, समता, समरसता, समानता व सहकारिता पर बहुजन एकता संभव है। अर्थात् अगर हम चाहते हैं की समता मूलक समाज की स्थापना हो, तो सबसे पहले उपरोक्त गुणों को बहुजन समाज को स्वतः आत्मसात करना होगा। बहुजन-समाज में बिखराव के कारण बहुजनों का हित प्रभावित हो रहा है।

"बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय" का सूत्र हमें मिला हुआ है। हमारे कार्य, विचार व चिंतन इसी सूत्र को चरितार्थ करने के लिए होने चाहिए। बहुजन-समाज के बीच इन विचारों पर आधारित संवाद चलना चाहिए। इससे वैचारिक एकता और आपसी भाईचारा स्थापित करने में मदद मिलेगी। सकारात्मक विचार और ऊर्जा बहुजन समाज को जागृत करने व चेतना पैदा करने के लिए लगाना होगा। ऐसे कार्य और विचारों के आधार पर बहुजन एकता कायम करने के लिए सतत आंदोलन चलाना होगा। "जिसकी जितनी संख्या भारी- उसकी उतनी हिस्सेदारी" और "सौ में नब्बे शोषित हैं, नब्बे भाग हमारा है। धन-धरती और राज-पाट में, नब्बे भाग हमारा है।" ये नारे बदलती दुनिया में विविध शक्तियों की सही पहचान कर बहुजन एकता और सतत् आंदोलन के द्वारा ही साकार हो सकते हैं।

बुद्ध, कबीर, रविदास, फुले ऐसे ही मानव समाज की स्थापना में अपना बहुमूल्य योगदान दिए। एक ऐसा समाज बने, जिसमें नफरत, अपमान, असमानता न हो। सबके बीच करुणा, मैत्री, प्यार हो। मनुष्य के द्वारा मनुष्य का शोषण न हो। ऐसे महापुरुषों के पथ का अनुसरण करते हुए मानववादी मूल्य के द्वारा ऐसे समाज का निर्माण किया जा सकता है, जिसमें बहुजन-समाज का हित और कल्याण हो।



## वर्तमान व्यवस्था में बहुजन किसान

-विजय जावंधिया

स्वतंत्रता के बाद ही से हमारे देश में संगठित-शहरी-औद्योगिक क्षेत्र और असंगठित-ग्रामीण क्षेत्र में हो सकने वाली आमदनी के विषय में भारी नीतिगत विषमता है। इन क्षेत्रों के लिए क्रमशः 'लिविंग वेज' और 'मिनिमम वेज' ऐसे दो मापदंड हैं। एक तरफ तो 'लिविंग वेज' वह न्यूनतम वेतन है, जिसमें एक कर्मचारी पांच सदस्यों के परिवार की जरूरतें पूरी कर पायेगा; और दूसरी तरफ, असंगठित क्षेत्र में लागू 'मिनिमम वेज' वह न्यूनतम वेतन है जिसमें एक कामगार मात्र अपने जीने के लिए आवश्यक कैलोरी खाद्य-ऊर्जा खरीद पायेगा। इस दोहरी व्यवस्था में निहित जालसाजी स्पष्ट रूप से सरकार की अन्यायपूर्ण नीति का पर्दाफाश करती है।

### बहुजन किसान

देश का बहुजन-समाज संगठित क्षेत्र के बाहर है। इसमें बहुत बड़ा हिस्सा किसानों की है। कारीगर समाजों में भी कई किसानों की भी करते हैं। सरकारी कर्मचारियों के लिए वेतन आयोग तो तुरंत 1947 में ही बना दिया गया था, जब कि कृषि मूल्य आयोग की स्थापना तो 1965 में हुई! उपज के न्यूनतम समर्थन मूल्य तय करने के लिए 'कृषि लागत और मूल्य आयोग' औद्योगिक क्षेत्र से अलग और गलत तरीका इस्तेमाल करता है। साथ ही घोषित मूल्य से कम मूल्य पर किसान को उसकी उपज बेचनी न पड़े इसके लिए कोई कानूनी प्रावधान आज तक नहीं किया गया।

दूसरी ओर हर दस साल में वेतन आयोग सभी कर्मचारियों और अधिकारियों के लिए न्यूनतम वेतनों की सिफारिश करता है। इन्हीं सिफारिशों के आधार पर सेना में सेवारत सैनिकों और अफसरों के वेतन भी निश्चित किये जाते हैं। इन वेतनों पर कर्मचारियों का कानूनन अधिकार बनता है। अंग्रेजों के जमाने से सरकारी नौकरों और किसान-मजदूरों के वेतन-आमदनी में जान-बूझ कर अंतर रखा जाता है, यह बात तो किसानों के मसीहा म. जोतीराव फुले ने अपनी मराठी पुस्तक 'शेतकऱ्या चा आसूड' ('किसानों का कोड़ा') में ही लिख रखी है: "गोरे अंग्रेज की सरकार ने सरकारी कर्मचारियों के वेतन बढ़ा कर, और किसानों पर कई प्रकार के कर लगाकर किसानों को कर्जे के बोझ तले दबा दिया है।"

### वेतन आयोग

अगर हम पहले से ले कर सातवें वेतन आयोग का अध्ययन करें, और अब आठवें वेतन आयोग की तैयारियों को देखें, तो यह बात एकदम खुल कर सामने आ जाती है कि स्वतंत्र भारत की सरकार भी अंग्रेजों की लकीर ही खींचती आई है. पाँचवां वेतन आयोग 1996 से लागू हुआ. इसमें न्यूनतम वेतन वृद्धि 2500 रुपये प्रति माह थी. महंगाई भत्ता और अन्य भत्ते अलग थे. छठा वेतन आयोग 2006 में लागू हुआ. इसमें न्यूनतम वेतन सात हजार रुपये प्रति माह था. वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी वेतन आयोग के खिलाफ थे, लेकिन उन्होंने 2016 में सातवां वेतन आयोग लागू किया. सातवें वेतन आयोग का न्यूनतम वेतन 18000 रुपये प्रति माह है. इसका मतलब है कि हर दस साल में सरकारी कर्मचारियों के वेतन में 2.5 से 3 गुना वृद्धि होती है. देशभर के सभी कर्मचारी अब 2026 के आठवें वेतन आयोग का सपना देखने लगे हैं. आठवें वेतन आयोग का न्यूनतम वेतन 45 हजार रुपये प्रति माह या उससे भी ज्यादा होगा. ऐसे कर्मचारी का वेतन 2036 के बाद एक लाख रुपये से अधिक होगा. अगर इसी क्रम की सरकारी नीति बरकरार रहती है तो 2047 के विकसित भारत में क्या चतुर्थ श्रेणी के सरकारी कर्मचारी का वेतन क्या ढाई से तीन लाख रु. नहीं होगा? और क्या सारी औद्योगिक, शहरी व्यवस्था में संगठित क्षेत्र के लोगों के वेतन इसी के अनुरूप नहीं बढ़ेंगे?

### आमदनी के विषय में न्याय हो

गांधीवादी अर्थशास्त्री डॉ. जे. सी. कुमारप्पा ने 1949 में स्पष्ट रूप में यह चेतावनी दी थी कि “किसान उत्पादन बढ़ाते रहें इसके लिए दाम एक निश्चित स्तर के नीचे न जाएँ इस बात की गारण्टी देना सरकार की जिम्मेदारी है. लेकिन कृषि उपज के दाम और कृषि की आमदनी की गारण्टी देने से भी बात नहीं बनेगी तो कृषि क्षेत्र की आमदनी और औद्योगिक क्षेत्र की आमदनी में समन्वय स्थापित करना होगा.” सरकारी नीतियों ने इस समन्वय को पूरी तरह से खत्म कर दिया है. हमारा वेतन आयोग को कोई विरोध नहीं है, लेकिन अगर आजाद भारत में डॉ. कुमारप्पा की चेतावनी को नजरंदाज कर वेतन आयोग का इस्तेमाल विषमता बढ़ाने और औद्योगिक माल का बाजार आबाद करने के लिए किया जा रहा हो तो उसका जिक्र तो करना ही होगा.

हम यह भी मान लें कि आठवां वेतन आयोग भी लागू किया जाए. लेकिन यदि चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को 1500 रुपये प्रतिदिन मिल रहे हैं, तब ग्रामीण क्षेत्र में असंगठित और खेतिहर मजदूरों को 1500 रुपये न सही, कम से कम 800-1000 रुपये प्रतिदिन तो मिलना ही चाहिए. यह व्यवस्था भी सरकार करे. साथ ही इन नए वेतनों को हिसाब में लेकर कृषि-उपज के दाम तय हों, और किसान को ये मूल्य मिलें इसका कानूनी प्रावधान सरकार करे.

एक तरफ, देश और विश्व-बैंक (WB) तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) विदेश के अर्थशास्त्रियों का कहना है कि वेतन आयोगों द्वारा संगठित क्षेत्र में वेतन वृद्धि से बाजार में होनेवाली मुद्रा की बढ़ोत्तरी मुद्रास्फीति का कारण नहीं बनती. वहीं दूसरी तरफ वे यह भी कहते हैं कि कृषि-उपज के दाम बढ़ाने से महंगाई और मुद्रास्फीति होती है. हम यह दोहरी बात कैसे मान लें? यह बहुजन समाज को गुलाम बनाए रखने के लिए अंग्रेजों का दिया हुआ दिमाग और नीति नहीं तो और क्या है?



## हम जनता नहीं, हमें बहुजन-समाज कहो

-फ़ज़लुर्रहमान अंसारी

बहुजन-समाज आम लोगों की एक सामूहिक पहचान है. एक ऐसी पहचान जो एक सामूहिक संस्कृति और ज्ञान की जिंदा परम्पराओं का भंडार है. जनता एक बेशकल और बेजान समुदाय माना गया है; जिसमें कोई अक्ल नहीं, जिसे शासित किया जाना उचित है और जिसे हुक्मरान भेड़ों की तरह हांकते हैं.

जनता को बहुजन-समाज का नाम देते ही उसके विविध गुण और शक्तियां नज़र आने लगती हैं; इसकी विरासत, ज्ञान परम्पराएँ, ऐतिहासिक भूमिका सब कुछ जिंदा हो उठते हैं, यानि बहुजन-समाज एक राजनीतिक हैसियत के साथ उभर आता है. देखने में तो बहुजन-समाज में अलग रहन-सहन, रस्मों-रिवाज़, वेश-भूषा, खान-पान, चाल-चलन, कला-कौशल, भाषा, धर्म आदि में अलग-अलग लोग दिखाई देते हैं, पर एक ऐसा सूत्र है, जिसमें ये लोग एक माला में पिरोई हुई मोती के मानिंद दिखाई देते हैं. ये माला भारत के बहुजन-समाज की ज्ञान परम्पराओं और जीवन संगठन का प्रतीक है, जिसे न्याय, भाईचारा और सहजीवन के धागे में पिरोया गया है.

हम उदाहरण लेंगे बुनकर-समाज का. इस देश के कारीगर समाजों में बुनकर समाज का हिस्सा सबसे बड़ा है. इनके पास जो ज्ञान (लोकविद्या) है उसने इस देश की सभ्यता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है. लेकिन सरकारों और बुनकर समाजों के नेता भी इस महत्वपूर्ण भूमिका को नज़रंदाज़ कर देते हैं. सरकारों और शासक वर्ग इन्हें अनुसूचित जाति में और इनके अपने राजनीतिक नेता इन्हें अति पिछड़ा या पसमांदा-समाज (पीछे छोटे हुवे लोग) कहते हैं ! मानव जाति के तन को सुन्दर वस्त्रों से ढकने वाले और सदियों से दुनिया में देश को कपड़ा उत्पादन में अग्रिम बनाने वाले बुनकर-समाज 'पिछड़े' या अनुसूचित (दलित) क्यों कहलायेंगे ?

जबकि बुनकर-समाज खुद को पसमांदा नहीं मानता बल्कि अपने आपको बहुजन-समाज का ही हिस्सा मानता है. चूँकि पिछड़ा या पसमांदा के विचार तो महज सौ-सवासी साल की राजनीति के नतीजे हैं, इसके पहले बुनकर तो बहुजन-समाज का ही एक बड़ा हिस्सा रहा.

बुनकर समाज ने सदियों से अपने ज्ञान, अनुभव, कौशल और हुनर को अनेक प्रयोगों के साथ विकसित कर आगे बढ़ाया है. स्थानीय सामग्री का उपयोग करके विविध अंचलों में बुनाई तकनीकों को समय-समय पर नया बनाया और तरह-तरह के कपड़ों का उत्पादन किया. खेती के बाद बुनकारी में सर्वाधिक रोजगार के अवसर रहे हैं. देश की अर्थव्यवस्था का एक मज़बूत खम्भा बुनकारी में रहा. यही वजह है कि अंग्रेजों ने इस उद्योग को तोड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी जिसे बुनकर-समाज आज तक भुगत रहा है.

आज के दौर में बुनकर समाज कई चुनौतियों से गुज़र रहा है, बिजली के मूल्य में बेतहाशा बढ़ोतरी, तैयार साड़ी बेचने के लिए स्थानीय बाज़ार न होना, साड़ी बनाने के धागे रेशम आदि पर मनमाना टेक्स लगाने की वजह से बुनकर-समाज, जो आत्मसम्मान का जीवन जी रहा था, देश-विदेश में जिसके उत्पादों की ख्याति थी, जो ठीक-ठाक पैसे भी कमा रहा था, उसको मजदूर बना दिया गया और अब उन्हें पिछड़ा करार दे दिया !

अब सरकारें कारपोरेट सेक्टर को लाखों करोड़ों रुपए की सब्सिडी देने लगी है और खादी-हैंडलूम सेक्टर में, जहां से बुनकरों को रोजगार मिलता था, उनकी सब्सिडी कम या खत्म होने लगी। सरकारें हमें हमारे संसाधन और बाज़ार से वंचित कर रही हैं और साथ ही पिछड़े होने का दाग भी लगा दे रही हैं.

बुनकर-समाज को उनकी कला और हुनर के सम्मान के साथ उनके उत्पादों के लिए न्याय संगत दाम मिलना चाहिए. यह तभी संभव है जब बुनकर अपनी ऐतिहासिक भूमिका और अनमोल ज्ञान की विरासत का दावा ठोके और बहुजन-समाज की एकता बनाने में अगुआ बनें.



## विमुक्त घुमंतू जनजातियों का सवाल

-हरिश्चंद्र केवट

भारत को आज़ाद हुए 78 साल हो चुके हैं। पर सच यह है कि आज भी हमारे देश में ऐसे समाज मौजूद हैं, जो अपनी असली आज़ादी की लड़ाई अब भी लड़ रहे हैं। विमुक्त घुमंतू जातियों की यह लड़ाई अंग्रेज़ों से नहीं, बल्कि अपने ही देश की सरकारों, उनकी नीतियों और व्यवस्था से है। यह लड़ाई कहीं अधिक कठिन है क्योंकि यह अपनों के बीच से निकले अन्याय और भेदभाव से जुड़ी है। ये समाज देश के अलग-अलग हिस्सों में 31 अगस्त को एकत्र होकर अपनी आज़ादी की अपील देश और पूरे समाज के सामने रखते हैं।

### अंग्रेज़ों का बनाया अभिशाप – क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट

1871 में अंग्रेज़ सरकार ने क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट (CTA) बनाया। इसके तहत लगभग 193 आदिवासी और घुमंतू समाजों को “जन्मजात अपराधी” घोषित कर दिया गया। इनके पारंपरिक कामकाज पर रोक लगी। कहीं आने-जाने की स्वतंत्रता भी छीनी गई।

इसके चलते इन्हें पुलिस थानों में रोज़ हाज़िरी लगानी पड़ती थी। इनको कैम्पों में सीमित कर दिया गया, जो किसी यातना शिविर से कम नहीं थे। यह वे समाज थे जो परंपरागत रूप से समाज की ज़रूरतें पूरी करते थे— परिवहन, व्यापार, औषधीय ज्ञान, कला-संस्कृति और लोकमनोरंजन तक। लेकिन अंग्रेज़ों को डर था कि ये लोग स्वतंत्रता और राष्ट्रवाद की भावना को गाँव-गाँव फैला रहे हैं। इसलिए इनकी आज़ादी पर पहरा बिठा दिया गया

### ये समाज कौन हैं?

इन समुदायों में नट, भाट, बंजारा, सपेरा, कालबेलिया, कंजर, पेरना, सांसी, सिंगीवाल, तेली, जोगी, नाविक, केवट, बेलदार, भर, राजभर, बहरूपिण्ड, मदारी, पेरना जैसे लगभग 191 समाज आते हैं। इनकी संख्या आज लगभग 25 करोड़ के आस-पास आंकी जाती है, और ये पूरे भारत में फैले हुए हैं। खासतौर से राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, मध्यप्रदेश, गुजरात, यूपी और बिहार में इनकी बड़ी आबादी है। ये समाज



व्यापार और परिवहन की रीढ़ थे— ऊंट, बैल, गधों और नावों के जरिए सामान एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाते। विशेष बात यह थी कि ये लोग गुरिल्ला युद्ध प्रणाली में निपुण थे और 1857 की क्रांति में अंग्रेजों के खिलाफ लड़े।

### समाजों का अपना ज्ञान :

ये समाज जड़ी-बूटियों और परंपरागत चिकित्सा के जानकार थे। कला, संगीत, रस्म-रिवाज और मनोरंजन के माध्यम से समाज को जोड़ते रहे। बेहद मेहनती और जीवट प्रकृति की ये समाज साहसी और स्वाभिमानी रहे हैं। सच कहें तो जहां जीवन की कल्पना तक मुश्किल है वहां भी इन समाजों ने जीवन और समाजों को गढ़कर दिखाया।

इन समाजों के पास ऐसा ज्ञान है, जो किसी किताब या डिग्री से नहीं, बल्कि जीवन से पैदा हुआ है।

कालबेलियों का साँप और जहर का ज्ञान, बंजारों का जल प्रबंधन और व्यापारिक मार्गों का अनुभव,

नाविक, केवट, मल्लाह के पास नदी के बहाव और मौसम का ज्ञान, नाव बनाने का हूनर, वहीं बेलदार के पास कूप बावड़ी, तालाब, कुंड से लेकर बड़े-बड़े आलिशान महल बनाने का ज्ञान है। नट और नटनियों के पास विविध कलाओं का लोकनाट्य, संगीत का ज्ञान है, पारधियों और जोगियों की औषधीय चिकित्सा पद्धतियों का ज्ञान है। सब धीरे-धीरे लुप्त हो रहा है। सरकारों ने इनकी जीवनशैली पर ही पाबंदियाँ लगा दी हैं और इनके ज्ञान को संदेह के घेरों में डाल दिया है।

### मुख्य सवाल क्या है?

आजादी के बाद आठ दशक लगभग पूरे होने जा रहे हैं फिर भी इन समाजों को बेड़ियों में क्यों रखा गया है? 1952 में स्वतंत्र भारत ने क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट खत्म तो किया, लेकिन उसी जगह अपराधी अधिनियम लागू कर दिया। मतलब, नाम बदल गया लेकिन अपराधी का कलंक इनके माथे पर जस का तस रहा।

इसके अलावा—वन अधिनियम, पशु क्रूरता अधिनियम और मेडिकल कानूनों ने इनके परंपरागत काम छीन लिए। सार्वजनिक और गोचर भूमि पर कब्जे ने

इनके पशुपालन को खत्म कर दिया। सपेरों, मदारी, नट और बहूरूपियों की रोज़ी-रोटी छीन ली गई। कई समुदायों को समाज में “बच्चा चोर” या “चोर-उचक्का” कहकर हिंसा का शिकार होना पड़ता है।

इन समाजों की आज़ादी की लड़ाई अब भी जारी है। आज भी घुमंतू और विमुक्त जनजातियाँ दर-दर की ठोकरें खा रही हैं। संविधान, लोकतंत्र, समानता और गरिमा इनके लिए सिर्फ़ किताबों के शब्द हैं। आयोगों और समितियों की रिपोर्टें अब तक फाइलों में कैद हैं।

भारत के लिए यह बड़ा सवाल है कि क्या हम इन समाजों को उनकी असली आज़ादी दिला पाएंगे? या फिर ये समाज हमेशा “जन्मजात अपराधी” की छवि ढोते रहेंगे? विमुक्ति दिवस केवल स्मरण का दिन नहीं, बल्कि उस ऐतिहासिक अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाने का अवसर है। जब तक ये सारे विमुक्त समाज अपनी पूरी गरिमा और अधिकारों के साथ खड़े नहीं होंगे, तब तक भारत की आज़ादी अधूरी है।



## पूँजीवादी व्यवस्था में बहुजन समाज

-रामजी सिंह

पूँजीवादी व्यवस्था में बहुजन-समाज के रहने, जीने की कोई सुव्यवस्थित व्यवस्था नहीं है। बात को यों कहा जाय कि पूँजीवादी एक संकटग्रस्त व्यवस्था है, जो आम नागरिक के समस्त अधिकारों पर अंकुश लगाता है। एक तरह से वह जनता की स्वतन्त्रता पर हमला करता है और साथ ही जबरजस्त तरीके से जनता का शोषण करता है।

बहुजन-समाज की ज्यादा जनता साधन विहीन है और कारीगर और श्रमिक के रूप में मौजूद है। वह पटरी व्यवसायी, ठेले वाले, शहर के चौराहों पर लेबर सट्टी लगाने वाले मजदूर, मंडी के मजदूर, मकान व सड़क बनाने वाले मजदूर, खेतों में काम करने वाले मजदूर कल-कारखानों में काम करने वाले मजदूर, अनाज, फल सब्जी, दूध उत्पादन करने वाले किसान, छात्र, नौजवान, महिला, छोटे दुकानदार व व्यवसायी.. में हमारे सामने मौजूद है। इस समाज में जितने तरह के लोग हैं, उनकी समस्याएं भी उतने ही तरह की है। इसलिए यहाँ कुछ लोगों की समस्याओं पर चर्चा करना जरूरी है।

पटरी व्यवसायियों के पंजीकरण की कोई व्यवस्था नहीं है, कभी भी भगाया जा सकता है। ठेले वालों को कहीं रुकने से मना किया जाता है, सामान कैसे बेचें? शहर के चौराहों पर लेबर सट्टी में पहुँचने वाले मजदूरों की काम पाने की, सड़क व मकान बनाने वाले मजदूरों की काम के बाद पूरी मजदूरी न मिलने की, खेत में काम करने वाले मजदूरों की कम मजदूरी व बहुत कम दिनों के काम की, कल कारखानों में काम करने वाले मजदूरों को श्रम कानूनों में संशोधन के द्वारा मालिक परस्त कानूनों से छटनी की, किसानों की महंगी लागत के पश्चात् न्यूनतम समर्थन मूल्य न मिलने की जैसी अलग-अलग समस्याएँ हैं।

इसलिए जारी हो जाता है कि जिस तरह की जनता है, उसके काम के आधार पर उनका संगठन बनाया जाय। संगठन के माध्यम से जुड़े जनता की फौरी व बुनियादी समस्याओं को उठाया जाय। किसी भी संगठन की शक्ति के जातिवाद और साम्प्रदायिकता के रूप में दो बुनियादी दुश्मन हैं, इसलिए आन्दोलकारी कार्यकर्ताओं एवं जनता की विशेष प्रशिक्षण के बिना उनकी समस्याओं को हल कराना संभव नहीं होगा। आगे चलकर इन तरह-तरह के संगठनों का मोर्चा बनाकर बड़े आन्दोलन के माध्यम से बहुजन-समाज की उपास्थिति और उनके मुक्ति का आन्दोलन बनाया जा सकता है।

देश के अन्दर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बड़े-बड़े आन्दोलन हुए, जिसमें किसान आन्दोलन एक प्रमुख आन्दोलन रहा है। 26 नवम्बर 2020 देश के संगठित मजदूरों ने औद्योगिक हड़ताल की और उसी दिन देश के विभिन्न किसान संगठन एकत्र हुए और कर्जा मुक्त किसान और फसल का वाजिब दाम सहित तमाम अन्य नारों के साथ आन्दोलन किया। आन्दोलनकारी देश की राजधानी दिल्ली के रामलीला मैदान जाना चाहते थे। राजधानी की सीमा में प्रवेश करने से रोका गया। आन्दोलनकारी किसान छः मोर्चों पर डट गये। सभी संगठनों ने मिलकर 'संयुक्त किसान मोर्चा' का गठन किया। संयुक्त किसान मोर्चा ने सरकार के दमन और सर्दी गर्मी बरसात की दुश्वारियों और पीड़ा को झेलते हुए डटा रहा। देश के सभी वर्गों खेतमजदूर, मजदूर, आदमी, पल्लेदार, व्यापारी, दुकानदार, राजकीय व केंद्रीय कर्मचारी यूनियनों, स्वतन्त्र समूहों सहित संगठनों के साथ ही देश के खिलाड़ियों, कलाकारों, बुद्धजीवियों सामाजिक कार्यकर्ताओं, गैर सरकारी संगठनों, राजनितिक पार्टियों ने किसान आन्दोलन को नैतिक समर्थन दिया। 11 दिसम्बर 2021 को संयुक्त किसान मोर्चा विजयी होकर दिल्ली की सीमाओं से हटा। इस आन्दोलन की धमक देश, दुनिया तक में गूँजी।

दुनियाँ में जनता की एकजुटता से मुक्ति आन्दोलन, विभिन्न श्रमिक संगठनों के आन्दोलन विजयी रहे हैं। अनेक उदाहरण के रूप में मौजूद है। वर्तमान में तमिलनाडु में सैमसंग कर्मचारियों का 31 दिन तक चला आन्दोलन तमाम बाधाओं, संकटों,

दुश्चारियों तथा दमन को झेलता हुआ विजयी होकर निकला। यही श्रमिक वर्ग देश दुनियाँ को अच्छे व्यंजनों के साथ पेट भरने, साइकिल, कपड़ा, जूता, चश्मा, मोटर साइकिल, कार, ट्रक, बस, टेलीफोन, मोबाइल, लैपटॉप, कम्प्यूटर, रेडियो, टेलीविजन, बिजली के उपकरण, आलीशान भवनों, सड़कों पुलों, रेलगाड़ी, हवाई जहाज, लड़ाकू विमान आदि बनाकर दुनियाँ के प्रगति की दिशा तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। बहुजन-समाज की सांगठनिक क्षमता चाहे जो भी हो, परन्तु बहुजन समाज के श्रमिक वर्ग का संगठित आन्दोलन पूँजीवादी व्यवस्था को अन्दर तक झकझोर देता है। यदि बहुजन समाज का संयुक्त और जुझारु आन्दोलन इंकलाबी नारों के साथ चले तो पूँजीवादी व्यवस्था में बहुजन-समाज द्वारा अपनी उपास्थिति का एहसास कराते हुए बहुत सारी सहूलियतें हासिल की जा सकती है।



## हाट व स्थानीय बाजार बहुजन-समाज के ज्ञान पुंज ये बहुजन-समाज के ज्ञान और जीवन-मूल्यों के जीवंत स्थान हैं।

-संजीव दाजी

हाट और स्थानीय बाजार पूरे देश में फैले हैं और जहां-जहां बहुजन समाज है वहां-वहां ये पनपते रहे हैं। स्थानीय भाषाओं में उनके अलग-अलग नाम और रूप हैं। वर्ष 2011 के बाद से विद्या आश्रम, सारनाथ में ज्ञान पंचायत कैसी हो? कहां हो? इसके उद्देश्य और तरीकों पर विस्तृत बहस होती रही है। मध्य प्रदेश में इंदौर और आसपास तथा मालवा-निमाड़ के अंचलों में, महाराष्ट्र के औरंगाबाद और चंद्रपुर, चिमूर के अंचलों में अनेक ज्ञान-पंचायत बैठाने का अनुभव मिला। इसी दौरान हाटों और स्थानीय बाजारों में भी ज्ञान-पंचायत बैठाई गई और हाटों को नजदीक से देखने-समझने के मौके खुलते गए। इन्हीं अनुभवों को साझा कर रहा हूं।

किसी भी अंचल के लोगों के ज्ञान और जीवन मूल्य अपने-आप में खास होते हैं। प्रकृति और मनुष्य के उन्मुक्त संबंधों के चलते यह खिलते हैं। सैकड़ों अंचल हैं, जो छोटे-छोटे गांवों से बने हैं। यदि किसी हाट या स्थानीय बाजार के आस-पास के 10-12 मील का घेरा लें तो इस घेरे में आने वाले गांवों का झुंड एक ज्ञानपुंज की तरह दिखाई देता है। यानी इस घेरे में नाना तरह के ज्ञानियों का झुंड है। किसी अंचल की यह आबादी ज्ञान की दार्शनिक-सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक इकाई मानी जा सकती है। इस लोक-इकाई के लोग आपस में ज्ञान की साझेदारी तो करते ही हैं लेकिन साथ-साथ पूरे अंचल की समझ और साझेदारी इन इकाइयों के मार्फत ही होती है। अपनी बात को मैं ऐसा रखूँ की एक अंचल को 12-12 मील के वृत्त में बांट दें और एक वृत्त का केंद्र एक हाट को बनाएं तो शायद समझने में आसानी होगी। किसी अंचल के साप्ताहिक हाटों की श्रृंखला को देखें तो इतवार से सोमवार तक के हाटों को समझने से शायद सात लोक इकाइयों के झुंड को भी समझने में आसानी होगी।

मालवा-निमाड़ के क्षेत्र में सात हाटों को जोड़ती लोकविद्या ज्ञान यात्रा निकालने के प्रयास हुए हैं और सत्-सपता के आयोजनों के प्रयास हुए और इनके साथ हाटों में कला के आयोजन भी हुए, इन सभी आयोजनों से लगातार नई-नई बातें

खुलते जा रही हैं। लोगों की पहल से 12 बातों की 12 बातें और हर बात की 12 - 12 बातें सामने आती जा रही है।

हर कोई जानता है कि हाटों के जीवंत रूप को अंग्रेजी शासन ने सोची समझी साजिश से तहस-नहस किया है। अंग्रेजों के बाद में भी जो शासक आए, उन्होंने भी हाटों को शक्तिशाली बनाने के लिये कोई उपाय नहीं किया। हाटों की दुर्दशा या हाटों को व्यापारिक-बाजारी दृष्टिकोण से कमजोर कड़ी मानना या ऐसे ही किन्हीं शब्दों से समझना शायद नासमझी ही है। हर एक हाट खास है क्योंकि हाट के आसपास के बारह मील की दूरी पर रहने वाले लोगों का प्रकृति से संबंध और मनुष्य-मनुष्य के आपस के संबंध सतत बदलते रहते हैं। यह संबंध अनेक विविधता लिए होते हैं। हाटों का सहज स्वभाव, लोक इकाई में रहने वाले लोगों के सहज स्वभाव का ही परिणाम है। लोगों के ज्ञान में, संघटित ज्ञान की मूल्य-मान्यताओं को नकारने का सहज भाव मिलता है। विभिन्नता के चलते सहजीवन की कला को सीखने का केंद्र ही हाट है। हाट न केवल मानवता का जीवंत स्थान है बल्कि हाट उस क्षेत्र के सत् के दर्शन का स्थान होता है।

कैसे? चलो, परखते हैं!

समाज के लिए कार्य करने के उत्सुक युवाओं के साथ एक अध्ययन किया गया। उनसे निम्नलिखित चरणों में कार्य करने का अवसर दिया गया।

(1) किसी भी एक हाट को केंद्र मानकर बारह मील का वृत्त खींचो।

(2) इस वृत्त के अंदर आने वाले लोगों को लोकविद्या के जानकार यानि लोकविद्याधर का दर्जा देने का मन बनाओ।

(3) अब वृत्त को 12 बराबर-बराबर भागों में बांट दीजिए। प्रत्येक भाग में आने वाले गांवों को चिन्हित करके इन गाँव के लोगों की सूची बनाईये।

(4) ध्यान रहे कि किसी एक भाग में रहने वाले लोगों के जीवन के हर पहलू पर गौर करने पर ही इनके ज्ञान के प्रकार और जीवनमूल्यों पर कोई महत्वपूर्ण तथ्य मिलते हैं।

(5) अब वृत्त के प्रत्येक भाग में लोकविद्या जन आंदोलन से संबंधित एक विषय पर कुछ गतिविधियों को लोगों से साझा कीजिए .

यानी वृत्त के बारह भागों में कुल 12 अलग-अलग गतिविधियों को साझा किया जा सकता है. ये बारह गतिविधियां अंचल के स्वभाव को देखते हुए तय की जा सकती है.

इसप्रकार मालवा-निमाड अंचल के ग्राम भकलाय के लोगों ने एक उदाहरण पेश किया है. ग्राम भकलाय इंदौर से लगभग ३५ किलोमीटर की दूरी पर है. जिन बारह बातों को किसी एक हाट में परखा गया वह गुलावड गाँव का शनिवार का हाट है. जिन 12 बातों पर इस हाट में साझा किया जा रहा है वे निम्नलिखित हैं.

- (1) दर्शन -- सत् का निर्माण और पुनर्निर्माण
- (2) ज्ञान -पंचायत
- (3) लोकविद्या ज्ञान-यात्रा
- (4) लोकविद्या सत्संग
- (5) लोकविद्या फिल्मोंकन
- (6) कौल -- लोकविद्या कला आयोजन
- (7) एक मुठ्ठी अनाज
- (8) पांच खम्भों की झोपडी का निर्माण
- (9) लोकविद्या दरवाजा निर्माण
- (10) सत् सपता
- (11) पारो-दरीया का लोकविद्या का दावा हाटों में.
- (12) हाटों को कैसे जोड़ें ?

इस अंचल में बड़ी संख्या में छोटे किसान हैं , जिनमें आदिवासी समाज के साथ-साथ अन्य समाज भी है। सत्संग की परम्परा है और सत्संगी संतों की वाणी को



लोगों में बांटने में आनंद लेते हैं। अपने जीवन में भी अनुसरण करते हैं। सत्संगी जीवन दर्शन की चर्चा को बड़ी उत्सुकता से करते हैं।

ऊपर दी गई 12 बातों पर सत्संगियों ने पहल ली है और ज्ञान आंदोलन में अमूल्य योगदान दिया है। जब सत्संगी हाटों में सत्संग के माध्यम से 12 बातों को साझा करते हैं तब लोगो की प्रतिक्रिया से साफ दिखाई देता है कि हाट बहिष्कृत समाजों के ज्ञान के जीवंत स्थान है। जब हाट के लोग भी शामिल होते हैं तब लगता है कि हाट बहिष्कृत समाज के जीवन मूल्यों के जीवंत स्थान है। जब 12 बातों की 12 बातें खुलती हैं तब हर बात में नई 12 बातें दिखने लगती हैं।

महाराष्ट्र में चन्द्रपूर जिले के चिमूर हाट में भी बहुत दिलचस्प बातें दिखाई देती हैं। शायद हर एक अंचल की ज्ञानपूज-लोक-इकाई अपने आप में अद्भुत है। इस भूमिका के साथ मैं स्वराज ज्ञान पंचायत में अपने अनुभव को साझा करना चाहूंगा।



## समाजों के विविध नाम और राजनीतिक दृष्टि

-सम्पादक

भारत की राजनीति और सैद्धांतिक यात्राओं में दबाये गए, वंचित, तिरस्कृत, और गरीब लोगों अथवा समाजों के लिए अलग-अलग भाषा का प्रयोग किया गया है। जैसे इन्हें कमेरा, शोषित, बहिष्कृत, स्वदेशी समाज, लोकविद्या समाज, आदि शब्दावली से पहचाना गया है। इन अलग-अलग शब्दों का इस्तेमाल अलग-अलग दृष्टिकोणों से समाज को देखने वालों ने किया है।

1. **कमेरा** : कमेरा यानि वे लोग जिनका जीवन मेहनत पर आधारित है, श्रमसाध्य हैं, शोषित समाज दल के कार्यकर्ता अधिकतर इस शब्द का प्रयोग करते हैं। ये समाज की जातीय संरचना के इर्द-गिर्द सोचते हैं। हर चीज़ का मानक मनुष्य को मानते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि के समर्थक हैं, अपने को मानवतावादी कहते हैं। ये लोग मध्य उत्तर प्रदेश से पश्चिमी बिहार (कानपुर से पटना) के बीच मिलते हैं।
2. **शोषित** : इस शब्द का प्रयोग अधिकतर कम्युनिस्ट करते हैं। ये शोषित समाज की बात नहीं करते तथापि शोषित वर्गों की बात करते हैं।
3. **बहिष्कृत** : इस शब्द का प्रयोग डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर ने 'बहिष्कृत भारत' पत्रिका के नामकरण में किया है। बहिष्कृत का यह अर्थ व्यापक है; केवल अस्पृश्य समाज के लिए नहीं किया गया है। तथापि कानपुर के 'मजदूर किसान नीति' (पत्रिका) समूह ने 'बहिष्कृत-पश्चिमीकृत' शब्दावली का इस्तेमाल किया। वह इस अर्थ में कि जिन लोगों को आधुनिक भारत की बनावट में कोई स्थान नहीं मिला उन्हें बहिष्कृत कहा गया और बाकी लोग पश्चिमीकृत हुए क्योंकि उनका जीवन अधिकतर पश्चिमी विचारों से प्रेरित था। इसे किसान आन्दोलन के नेतृत्व ने 'भारत-इण्डिया' की चौखट में भारत के रूप में पहचाना। ये किसान, कारीगर, आदिवासी, स्त्रियाँ, छोटे-छोटे दुकानदार आदि रहे।
4. **स्वदेशी-समाज** : महात्मा गाँधी के विचारों के अंतर्गत यह सोचा गया कि भारत की परम्पराओं से यहाँ की संस्कृति, दर्शन, उद्योग आदि को अंग्रेजी

राज में सार्वजनिक उपस्थिति के मौके नकार दिए गए, ऐसी स्थिति में यहाँ का सक्रिय विचार और कर्म दोनों ने ही अपना अस्तित्व बचाने के लिए निजी रूप अख्तियार कर लिए, यानि पारंपरिक समाज ने उस स्वदेशी समाज का रूप ले लिया जो अपने आस-पास की दुनिया में बंध गया, आधुनिक शिक्षा और बड़े व्यापार व उद्योग से वंचित इस समाज को स्वदेशी समाज के नाम से जाना गया, इसमें मोटे तौर पर यहाँ के किसान, कारीगर, आदिवासी, छोटा-छोटा धन्धा करने वाले और इन सबके घरों की स्त्रियाँ आते हैं.

5. **बहुजन-समाज** : यह सामान्य लोगों का समाज है. बहुजन यानि जो अभिजात्य नहीं हैं. बुद्ध वाणी में इस शब्द का प्रयोग बार-बार हुआ है. कांशीरामजी ने भारत की राजनीति में इसका प्रयोग किया. कहते हैं कि इनके द्वारा बहुजन शब्द के प्रयोग का प्रयोजन यह था कि दलित समाज और अन्य पिछड़ा वर्ग के लोग आपस में एका कायम कर सकें.
6. **लोकविद्या-समाज** : ज्ञान की दुनिया संगठित ज्ञान और लोकविद्या से बनी दिखाई देती है. संगठित विद्या पारंपरिक हो सकती है अथवा आधुनिक विश्वविद्यालयीय. लोकविद्या समाज में बसती है, लोगों के पास होती है. इस विचार के अनुरूप एक लोकविद्या समाज भी है. यानि वे लोग जो लोकविद्या के बल पर अपना घर और समाज चलाते हैं तथापि अपनी विद्या को अपने अनुभवों, अपने मूल्यों, अपने प्रयोगों और अपनी तर्कबुद्धि से नवीनीकृत करते रहते हैं. लोकविद्या समाज मोटे तौर पर किसानों, कारीगरों, स्त्रियों, छोटे-छोटे दुकानदारों और आदिवासियों से बना हुआ है. लोकविद्या में इन सब समाजों की आपसी एकता के सूत्र हैं.
7. **पिछड़ा और दलित** : जातियों की पहचान के मार्फत इन समाजों की पहचान की गई है.

इन विविध नामों से संबोधित समाज लगभग एक ही हैं. श्रम, शोषण, निष्कासन, स्थानीयता, ज्ञान और जाति के कोणों से यह विविध शब्दावली बनी है, तथापि लोग वही हैं.



## बहुसंकट और बहुजन-समाज (Polycrisis and Bahujan Samaj)

-अमित बसोले

स्वराज की धारणा प्राचीन है और बहुजन की भी. लेकिन इनके आधुनिक रूप बीसवीं सदी की राजनीति में गढ़े गए हैं. यूरोप का साम्राज्यवाद जब अपनी चरम सीमा पर था तब गांधीजी ने स्वराज के रूप में एक बड़ा विकल्प देश-दुनिया के सामने रखा था. लेकिन व्यापक स्तर पे इसका कोई मूर्त रूप नहीं गढ़ा जा सका. बल्कि साम्राज्यवाद के अंत के बाद उदारवादी लोकतंत्र (liberal democracy) का दौर आया. दूसरे विश्व युद्ध के मलबे से जो नयी दुनिया बनी उसमें ऐसे छोटे-बड़े, अमीर-गरीब लोकतांत्रिक राष्ट्र-राज्यों की एक नियम-आधारित व्यवस्था (rules-based order) अमरीका के नेतृत्व में बनायीं गयी. लोकतंत्र, आधुनिक विज्ञान और विकास (Democracy, science और development) यह इस उत्तर-औपनिवेशिक दुनिया के आधार-स्तम्भ थे.

इन तीनों में, शुरुआती दौर में बहुजन-समाज की कोई खास भूमिका नहीं थी. भारत में अस्सी के दशक के बाद पूरे देश में बहुजन पार्टियों का सत्ता में आना-जाना शुरू हो गया (दक्षिण भारत में यह प्रक्रिया और पहले से शुरू थी). इसी दौरान सूचना क्रांति के आने से, ज्ञान की दुनिया में भी हलचल मच गयी. साइंस और विश्वविद्यालयों के ज्ञान के अलावा समाज में भी ज्ञान पाया जाता है, यह धारणा पूंजीवादी हलकों में और जन आंदोलनों में भी फैल गयी. एक तरफ विश्व बैंक (world bank) जैसी संस्थाओं से उपजे पारंपरिक एवं देशज ज्ञान (traditional and indigenous knowledge) को अंतर्राष्ट्रीय मार्केट से जोड़ने का विचार और दूसरी तरफ जल-जंगल-जमीन के आंदोलन और लोकविद्या जन आंदोलन इसके उदाहरण हैं.

सूचना क्रांति का असर लोकतंत्र पर भी पड़ा क्योंकि सच और झूठ के बीच का अंतर पोस्ट ट्रुथ (post-truth) के ज़माने में और धुंधला होता गया. और ऐसे में न केवल गरीब बल्कि अमीर मुल्कों में भी उदार लोकतंत्र (liberal democracy) की न्यूनतम शर्तें भी नदारद होने लगीं। साथ ही, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के समय का तीसरा स्तम्भ, विकास (development) भी अपने संकट से गुजरने लगा. इसकी वजहें थीं इक्कीसवीं सदी में जलवायु परिवर्तन (climate change) के संकट का

तीव्र रूप इख्तियार कर लेना और गैरबराबरी का लगातार बढ़ते जाना. इससे विकास की बीसवीं सदी की धारणा पर और बड़ा प्रश्न चिन्ह लग गया.

इस तरह, लगभग 2015 तक, यानि दुसरे विश्व युद्ध के केवल 70 साल बाद, वे सारे स्तम्भ जिन पर नयी दुनिया कायम थी-आधुनिक विज्ञान, लोकतंत्र, विकास - (science, democracy, development) हिलते हुए नज़र आ रहे थे. अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प के आने के बाद, इन सब को जोड़ने वाली नियम-आधारित व्यवस्था (international rules based order) भी अभूतपूर्व तरीके से चुनौतियों का सामना कर रही है. बल्कि यह कहना भी शायद अतिशयोक्ति नहीं होगी कि इस व्यवस्था का अंत हो चुका है. उदाहरण के लिए विश्व व्यापार मंडल (WTO) का व्यापार-सम्बंधित विवादों का निवारण करने वाला मंच (dispute resolution mechanism) कई सालों से ठप्प है. और यूरोप फिर एक बार युद्ध के कगार पर खड़ा है.

लेकिन पूंजीवाद अपने वैश्विक रूप में, वैश्वीकरण के क्षय (deglobalisation) के बावजूद, अभी भी कायम है. और न सिर्फ यह, बल्कि इसके ऊपर बीसवीं सदी में लगे अंकुश जैसे कल्याणकारी राज्य और उदार लोकतंत्र (welfare state, liberal democracy) भी अब इसकी अमानवीय प्रकृतियों को कम करने में नाकाम हैं. यह स्थिति खास कर यूरोप और अमेरिका में नज़र आती है.

उपरोक्त किसी भी संकट, यानि जलवायु परिवर्तन, अंतर्राष्ट्रीय नियम आधारित व्यवस्था का अंत, पोस्ट ट्रुथ और उदार लोकतंत्र का अंत (climate change, end of international rules based order, post-truth and end of liberal democracy) का हल बीसवीं सदी की विशिष्ट (elite) विचारधाराओं में नहीं मिलता. इस पार्श्वभूमि में बहुजन स्वराज का विकल्प और भी महत्वपूर्ण हो जाता है.

बहुजन स्वराज, यानी वह विचार जो बहुजनों के ज्ञान (लोकविद्या) पर आधारित है, जो व्यक्ति और समाज के बीच के द्वंद की अपनी अलग समझ रखता है, और मूल्यों (सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक) को तथ्यों से ज़बरदस्ती अलग नहीं करता. बहुजन स्वराज को प्रेरित करने वाली ताकतें भारत में लम्बे समय से जीवंत हैं. भक्ति परम्पराएं इसका एक पहलू हैं. गांधीजी के विचारों में भी यह साफ़

नज़र आता है। उनकी स्वराज की कल्पना में यह भी साफ़ है कि जब तक पहल सही मायनों में बहुजन या लोकविद्याधर-समाज से नहीं होगी, वह स्वराज नहीं कहलाएगी। इस धारणा के दूर-गामी परिणाम निकलते हैं। इसका मतलब है की बहु-संकटों (polycrisis) के दौर से निकलने का रास्ता आज के पढ़े-लिखे “leadership” से नहीं आता। इनकी सकारात्मक भूमिका हो सकती है, जैसे विश्वविद्यालय, science आदि की भी हो सकती है, लेकिन वह भूमिका क्या होगी यह बहुजन समाज ही सही मायनों में तय कर सकता है।

लोकविद्या जन आंदोलन का अब लगभग तीन दशकों से यह दावा रहा है कि न्याय-संगत, खुशहाली और मानवीय समाज का ज्ञान-आधार लोकविद्या में ही है। इन तीस सालों की घटनाओं ने इस दावे को और मज़बूत किया है। क्योंकि यूरोपीय राष्ट्र-राज्य और उदारवादी लोकतंत्र (liberal democracy) की जो कुछ बची-खुची हैसियत थी, उसे वहीं की जनता ने खोखला दिखा दिया है। साथ ही आर्थिक वृद्धि ने वैश्विक स्तर पर गैरबराबरी को तीव्र रूप से बढ़ा दिया है। वैश्वीकरण के खिलाफ़ अमेरिका में चल रही मुहिम इसी का नतीजा है।

शायद यह अभी साफ़ नहीं दिखाई देता, लेकिन बीसवीं सदी का ढांचा गिर चुका है। उसकी जगह क्या होगा, यह अगले दो या तीन दशकों में राजनीति और आंदोलन तय करेंगे।



## अपील

### "दुनिया के बहुजन-समाज एक हो"

- रामजनम

दुनिया के समाजों की दो केटेगरी स्थापित हो गई है विशिष्ट समाज या प्रोफेशनल क्लास और दूसरा बहुजन- समाज (सामान्य जन)। प्रोफेशनल क्लास मनुष्य समाज का बहुत ही छोटा हिस्सा है, जिसका दुनिया की राजनैतिक, आर्थिक व्यवस्थाओं, संसाधनों और शैक्षणिक संस्थाओं पर कब्जा है। यह प्रभुवर्ग पूंजी, साइंस-तकनीक, तिकड़म और डंडे के बल पर दुनिया को हांकता हुआ नजर आ रहा है। इनकी कारगुजारियों के चलते जड़-जीव जगत और पर्यावरण में उथल-पुथल और हाहाकार मचा हुआ है।

दूसरी तरफ दुनिया का विशाल बहुजन-समाज (सामान्य जन) है, जो जल, जंगल ज़मीन से जुड़ा हुआ है और स्थानीयता से लगाव के साथ जीवन जीता है। स्थानीय समाज स्वायत्त मिजाज का होता है और स्वायत्तता स्वराज की आत्मा है। इस देश की राज परम्परा स्वराज की परंपरा रही है, जो आज भी बहुजन-समाज के अलग-अलग हिस्सों की पंचायतों में जीवंत है। समाज निर्माण, रचना, सृजन और उत्पादन के काम में लगा हुआ है यह बहुजन-समाज छोटी पूंजी से कारोबार और जीविकोपार्जन करने में माहिर रहा है।

सामान्य जन की दिनचर्या में कला, ज्ञान और श्रम का अद्भुत संगम है। उत्तर भारत के खेतों में लोक-गीत गाकर धान रोपती किसान महिलायें और अपने ठीके पर बैठे हुए कारीगरों को, जैसे कुम्हार को उसके चाक पर काम करते या बुनकर को करघे पर बुनते हुए कला, ज्ञान और श्रम का अद्भुत संगम नज़र आता है। जीवन मूल्यों और पुनर्निर्माण तथा संस्कृति व सभ्यता गढ़ने का काम बहुजन-समाज ही करता रहा है।

मौजूदा राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्था एवं विकास की अवधारणा के चलते बहुजन-समाज लूट, अन्याय और प्रताड़ना का शिकार हो गया है। प्रभुवर्ग ने दुनिया के सामान्य जन को एक रस्सी से बांध दिया है।

शोषण लूट, अन्याय, अत्याचार और तिरस्कार आदि के दौर में बहुजन-समाज की चेतना का विस्तार हुआ है, जिसकी तस्वीर दुनिया की तमाम स्थितियों-परिस्थितियों की उथल-पुथल में दिखाई दे रही है।

संकटग्रस्त दुनिया और बहुजन-समाज की मुक्ति के लिए रस्सी से बंधे बहुजन-समाज की रस्सी खोलना होगा। परिवर्तन की दृष्टि से नई कहानी, नये नारे गढ़ने होंगे और बहुजन-समाज का घोषणापत्र तैयार करना होगा, जो कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो और हिन्द स्वराज के वक्तव्य की तर्ज पर हो सकता है। 'कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो' और 'हिन्द स्वराज' जैसे वक्तव्यों ने उस दौर की दुनिया में और बहुजन-समाज में एक हलचल पैदा कर दी, जिसने दुनिया के बहुजन-समाज की शक्ति जागृत हो उठी। इस दौर के कुछ प्रसिद्ध नारे "दुनिया के मजदूरों एक हो", "स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" और "अंग्रेजों भारत छोड़ो" आदि ने जन-जन में एक नए और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण का दर्शन खड़ा किया।

चिन्तन मनन सोच विचार करने वाले लोगों की विशेष जिम्मेवारी बनती है कि खुशहाल और बराबरी पर आधारित समाज बनाने की नई कहानी के साथ बहुजन-समाज का घोषणापत्र तैयार करने लिए बहुजन-समाज में एक कारगर संवाद स्थापित करें। विद्या आश्रम, सारनाथ में बहुजन ज्ञान विमर्श के मार्फत यह शुरुआत हो गई है। नारा यह है कि "दुनिया के बहुजन समाज एक हो"।





गरीबी, बेरोज़गारी और अशिक्षा के महाजाल  
से मुक्ति का रास्ता मिलेगा  
जब बहुजन-समाज के ज्ञान को  
विश्वविद्यालय के ज्ञान के बराबर के ज्ञान का दर्जा मिले  
और  
लोकविद्या आधारित कार्य के लिये  
सरकारी कर्मचारी के बराबर की आय मिले.  
यह सामाजिक विषमता के खिलाफ  
संघर्ष को आगे बढ़ायेगा.  
यह सामाजिक न्याय के संघर्ष का अगला चरण है.

भाग दो : स्वराज

## ‘स्वराज’ यानी ‘समाज राज्य’

-अरुण कुमार

‘आम जन’ सुनते ही ‘खास जन’ सहज ही ध्यान में आता है। संवैधानिक पदों पर बैठे लोग सभी सांसद, विधायक, आईएस, आईपीएस अफसर ऐसे अनेक लोग, जिन्हें हम ‘खास जन’ के रूप में आसानी से पहचान लेते हैं। लेकिन ‘खास जनों’ का यह एक बड़ा समूह आम जन में घुला-मिला रहता है। वकील, डॉक्टर, वैज्ञानिक, इंजीनियर आदि बड़े उद्योगपति, बड़े व्यापारी यह सब खास जान है। विश्वविद्यालय में पढ़ाया जाने वाला ज्ञान खास जन का ज्ञान है। आबादी में अनुमानित 10 से 15% भाग इस खास जन का होगा। देश की संपत्ति और आमदनी में 80 से 90% तक पर कब्जा इनका ही है।

आम जन से इस ‘खास जन’ को हटा दिया जाए तो जो आबादी का हिस्सा बचेगा वही बहुजन है, यह मानना चाहिए। किसान, कारीगरी करने वाले लोग, आदिवासी, घर बार की देखभाल करने वाली महिलाएं, जो पूरी आबादी में आधी हैं, छोटी-छोटी दुकानदारी और तरह-तरह की सेवा करने वाले लोग और समाजों को मिलाकर बहुजन समाज को पहचानना चाहिए। आबादी का बड़ा हिस्सा होते हुए भी देश की संपत्ति और आमदनी में 20% के लगभग ही इनके कब्जे में है। यह मेहनती समाज है। इनके पास जो ज्ञान है वह विश्वविद्यालय के ज्ञान से भिन्न है। इस ज्ञान के आधार पर ही यह समाज अपना जीवनयापन करता है। प्रकृति और परंपरा से मिला यह ज्ञान ही उनकी वास्तविक संपत्ति है। इनके पास जल, जंगल, जमीन, नदी, समुद्र, पहाड़ आदि की अच्छी समझ के साथ उपभोग करने का ज्ञान है, जो पूरे देश की आबादी के जीवन का निर्वाह करवाने वाला ज्ञान है। विश्वविद्यालय इस ज्ञान को मान्यता नहीं देता, यह बहुजन-समाज का ज्ञान है।

बौद्ध ग्रन्थों में बहुजन का प्रयोग इस समाज के लिए हुआ है, ऐसा जानकारों का कहना है। वर्तमान राजनीति में भी बहुजन का प्रयोग हो रहा है। जातियों के आधार पर पहचाने गए बहुजन का इस्तेमाल सत्ता प्राप्त करने या उसमें भागीदारी निभाने के अवसर के रूप में होता है। हम बहुजन समाज की पहचान एक ज्ञानी समाज के रूप में रखते हैं।

कबीर, रविदास, तुकाराम, नामदेव, महात्मा फुले, आदि संत परंपरा से प्रेरित यह समाज आज भी अपनी परम्परा का सम्मान करते हुए जीवन यापन के साधनों का

उपयोग करता है। प्रकृति के किसी भी उपकरण को बिना नुकसान पहुंचाए निर्वाह के लिए उपयोग करना इन्हें भली भांती आता है।

इसके विपरीत आधुनिक समाज एक प्रतिस्पर्धी, लालची और भय पैदा करने वाले समाज का निर्माण कर रहा है, जो निरंतर प्रकृति के दोहन पर आधारित है। आधुनिक राज्य इसको संरक्षण भी देता है। खास जन का समाज है ही नहीं, सब अकेले हैं और एक दूसरे के विरुद्ध हैं। इसलिए खास जन को समाज की अपेक्षा राज्य अधिक सुरक्षा प्रदान करने वाली संस्था लगती है। यहां व्यक्ति तो है, लेकिन समाज नहीं है। पश्चिमी ज्ञान, जीवन शैली और जीवन दर्शन इनका आदर्श है। लालच, भय, चापलूसी इनकी प्रवृत्ति बन गई है, आधुनिक राज्य इसको बढ़ावा ही देते हैं। यहां किसी की सुरक्षा नहीं है 'खास जन' स्वयं में भी सुरक्षित नहीं है। बहुजन, आधुनिक राज्य से बहिष्कृत समाज है और असुरक्षित भी। लेकिन अपने समाज में सुरक्षित है।

बहुजन-समाज न्याय, समता, भाईचारे के आधार पर एक सहयोगी समाज का निर्माण करता है, जहां सभी को एक दूसरे की जरूरत है। यहां 'स्व' 'समाज' में विलीन हो जाता है। 'मैं' यहां 'हम' हो जाता है। बहुजन-समाज का यही स्वराज है। **'स्वराज' यानी 'समाज राज्य'। समाज-राज्य का आधार होगा, समाज के अधीन राज्य रहेगा।** ऐसे समाज में कोई भेद नहीं है। थोड़े-मोड़े अंतर से सब बराबर है। यह समाज राज्य का निर्माण करेगा और राज्य पर अंकुश भी रखेगा। स्वेच्छाचारी नहीं बनने देगा। यही बहुजन का स्वराज है।



## बहुजन और स्वराज

-कृष्ण गाँधी

### “बहुजन” शब्द की ज्ञानमीमांसा

“बहुजन” शब्द की मीमांसा का मतलब है कि “बहुजन” शब्द के क्या-क्या अर्थ निकलते हैं? उसका उपयोग क्यों और कैसे होना चाहिए? इस सवाल का जवाब है कि बहुजन शब्द का उपयोग एकवचन और बहुवचन दोनों में होता है और इसके कई अर्थ होते हैं, जिसे नीचे दिया जा रहा है.

बहुजन (बहुवचन) के मतलब निम्नलिखित हो सकते हैं:

- सामान्य जन
- बहुसंख्यक जन
- सत्ता के बाहर के लोग
- मेहनतकश
- असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत गैर-पेशेवर लोग
- सवर्ण जातियों को छोड़ अन्य सारी जातियां

बहुजन (एकवचन) के मतलब निम्नलिखित हो सकते हैं:

- सामान्य व्यक्ति
- सड़क का आदमी
- आम आदमी
- अंतिम व्यक्ति
- मेहनतकश वर्ग का व्यक्ति
- अवर्ण जाति का व्यक्ति

बहुजन शब्द के सर्वव्यापीकरण में समस्याएं हैं। भारतीय उपमहाद्वीप, दक्षिणी एशिया, या बौद्ध धर्म के प्रभाव वाले देशों को छोड़ अन्य कहीं बहुजन शब्द का सामान्य भाषा में प्रयोग की संभावना क्षीण है। उदाहरण के लिए यूरोप, उत्तर व दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया आदि महाद्वीपों में बोली जानेवाली भाषाओं में बहुजन या समकक्ष शब्द ढूंढ निकालना कठिन होगा।

यह निर्विवाद है कि मानव जाति का विकास विभिन्न सभ्यताओं, संस्कृतियों, भाषाओं, समूहों के विकास के रूप में हुआ। ऐसे में, पूरे विश्व में स्वीकार्य ऐसा कोई शब्द गढ़ना बड़ा मुश्किल है, जिसका अर्थ सभी भाषाओं में बहुजन (“सामान्य जन” या “ordinary people”) निकलता हो।

यह भी विचारणीय है कि क्या हमें ऐसा कोई प्रयास करना भी चाहिए या नहीं। स्वराज की किसी भी चर्चा को आगे बढ़ाने के लिए क्या यह आवश्यक भी है? ऐसा प्रतीत होता है कि यह आवश्यक नहीं है। क्योंकि स्वराज की अवधारणा के अंतर्गत शब्दों या प्रतीकों का विश्वव्यापीकरण तर्क संगत नहीं है। फिर भी, विभिन्न देशों, भाषाओं, और संस्कृतियों की सीमायें लांघ कर परस्पर संवाद करने के लिए कुछ परा शब्दों (“meta words”) का प्रयोग हमें मजबूरी में करना पड़ता है। “बहुजन” और “अंतिम व्यक्ति” ऐसे दो परा शब्द हैं जिनका प्रयोग हम अपनी चर्चाओं में कर सकते हैं।

जुड़ा हुआ एक सवाल यहां सवाल उठता है कि रंगभेद (apartheid) जैसे पहचानों पर आधारित बहिष्करण से ऊपर उठने का स्वराजीय मार्ग क्या है? आज दुनिया भर में ऐसे बहिष्करणों की एक बाढ़ सी आई हुई है। पूंजीवादी व्यवस्था के असमान विकास और वैश्वीकरण के चलते बेहतर जीवनयापन की तलाश में बड़ी संख्या में लोग आर्थिक रूप से संपन्न देशों में जा रहे हैं और अप्रवासी हो रहे हैं। लेकिन नए देशों में उन्हीं प्रकार के भेदभाव के वे शिकार हो रहे हैं, जिस प्रकार के भेदभाव का शिकार अपने ही देश में होते रहे हैं। जाति, नस्ल, भाषा, संस्कृति, धर्म और लिंग पर आधारित बहिष्करण इन भेदभावों के मूल में हैं। पूरे विश्व की राजनीति ऐसे बहिष्करण वादी पहचानों के आधार पर जनता में फूट और द्वेष फैलाने पर केंद्रित होती जा रही है।

ज्ञान के क्षेत्र में भी बहिष्करण होता है। संगठित ज्ञान के केंद्र, जैसे विश्वविद्यालय, शोध संस्थान, चाहे वे आधुनिक हों या परंपरावादी, उनसे जुड़े विद्वानों, विशेषज्ञों, और पंडितों का एक शक्तिशाली अल्पसंख्यक समूह असंगठित, आम लोग अर्थात् लोकविद्याधरों पर हावी होता है। और उनकी विद्या और ज्ञान, अर्थात् लोकविद्या को किसी प्रकार की मान्यता देने से इनकार करता है।

ऐसी परिस्थिति में हमें एक ऐसे समावेशी शब्द गढ़ने की जरूरत है, जो हर जगह आम लोग या साधारण जन का प्रतिनिधित्व करता हो। एक ऐसा शब्द जो सभी प्रकार के बहिष्करणों से परे हो, ऊपर उठता हो। संस्कृतियों और भाषाओं की सीमायें लांघकर स्वराज से जुड़े संवादों को आगे बढ़ाने में यह मददगार हो। शायद, बहुजन शब्द एक ऐसा शब्द है, जो ज्ञान समेत सभी प्रकार के बहिष्करणों से ऊपर उठता है। इसका मतलब है कि “बहुजन” की व्याख्या जाति, धर्म, नस्ल, भाषा, संस्कृति, सभ्यता, या क्षेत्र जैसे बहिष्करणवादी पहचान वाले लोगों के समूह के रूप में हम नहीं कर सकते हैं। बहुजन न स्वयं किसी प्रकार की विशिष्टता का दावा करते हैं, न ही उन्हें कोई विशिष्टता दी जा सकती है।

### स्वराज का अस्तित्ववादी स्वरूप

स्वराजीय कल्पना में समूची मानव जाति, अर्थात् सारे मानव समूहों का सर्व समावेशी महासमूह (grand ensemble), स्वायत्त इकाइयों से निर्मित होने वाली एक महा स्वायत्त इकाई (autonomy of autonomies) का उदाहरण है। जैसा इंटरनेट को सारे नेटवर्कों का महानेटवर्क कहा जाता है। समूचे मानवजाति की इस स्वायत्त महा इकाई के भीतर केंद्र-परिधि के रूप में विभाजन मौजूद नहीं है। जैसे पूरे ब्रह्मांड का कोई केंद्र नहीं है, और प्रत्येक स्थान से दिखाई देनेवाले दृश्य एक जैसे होते हैं। उसी प्रकार समूचे विश्व के विभिन्न राष्ट्रों, संस्कृतियों, और सभ्यताओं के बीच ऊंच-नीच का कोई क्रम नहीं है। समूची मानव जाति की सतत विकास प्रक्रिया में किसी एक राष्ट्र, संस्कृति या सभ्यता की निर्णायक भूमिका नहीं होती है। इस सतत विकास प्रक्रिया का कोई पूर्व निर्धारित अंत नहीं है। अंत क्या होगा किसी को मालूम नहीं है, विभिन्न प्रकार के अंत संभव है, और उनमें से कौन से अंत तक मानव जाति पहुंचेगी, यह मानव जाति के आज के कार्य और कार्य प्रणालियों पर बहुतेक निर्भर है।

इस अर्थ में भावी स्वराज-संपन्न समाज के निर्माण का कोई पूर्व निर्धारित ब्लूप्रिंट नहीं है। हमारा भविष्य आज हम किस प्रकार के कार्य चुनते हैं इस पर निर्भर करेगा। भविष्य खुला है अर्थात् पूर्व निर्धारित नहीं है। स्वराजीय दृष्टिकोण “साध्य बनाम साधन” (End versus Means) के द्वंद को नकारता है। स्वराजीय सोच में वर्तमान अर्थात् साधन ही सब कुछ है। यदि हम वर्तमान सही तरीके से जिएंगे, सही कार्य करेंगे, न्याय त्याग भाईचारा के मूल्य अपनाएंगे, स्वराज अपनाएंगे, तो भविष्य अपने आप सही बनेगा, भविष्य निर्माण का कार्य अलग से करने की हमें जरूरत नहीं पड़ेगी। साध्य (भविष्य) हमारे साधन (वर्तमान) को तय करें यह विसंगति पूर्ण होगा। पूर्व निर्धारित भविष्य के अनुसार आज का कार्य करना वर्तमान की संभावनाओं का जन्म से पहले हत्या करना है। स्वराज कोई ऐसी चीज नहीं है जिसका खाका हमें पहले से तैयार करना है और उसे भविष्य में मूर्तरूप देना है। स्वराज हमेशा वर्तमान की सीमाओं में स्थित है, जिसका क्रियान्वयन आज और इस वक्त करने का है, और जो किसी दूरगामी लक्ष्य पर निर्भर नहीं है।

बेगमपुरा या अमरदेसा जैसे आदर्शलोक हमारे आज के कार्य तय करें, यह स्वराजीय सोच के विपरीत है। स्वराज संपन्न समाज की किसी भावी तस्वीर के अनुसार वर्तमान को ढालने की जगह, स्वराज के धम्म के अनुसार वर्तमान को जीना अधिक महत्वपूर्ण है। समाज के प्रत्येक स्तर पर स्वराज की पुरानी परंपराओं के संवर्धन के साथ उनमें नए आयामों जोड़ने का निरंतर प्रयास होना चाहिए। बेगमपुरा या अमरदेसा जैसी कल्पनाएं अंतिमता (teleology) से प्रेरित कार्यों को जन्म देते हैं। ऐसे कार्यों में साध्य का साधन पर (भविष्य का वर्तमान पर) हावी होने का खतरा निहित है, जो हमें स्वराज के धम्म के विपरीत दिशा में ले जायेगा।

इस प्रकार स्वराज रोजमर्रे की हमारी जिंदगी का अभिन्न अंग है। व्यक्तिगत या सामाजिक, हर स्तर पर, हर परिस्थिति में, हर क्षण, स्वराज और गुलामी के बीच चुनने की चुनौती हमारे सामने रहेगी। उस चुनौती का सामना करने में हम किस हद तक सफल होंगे यह तय करेगा कि हम स्वराज के मार्ग पर अग्रसर होते हैं या नहीं। हमेशा इस बात का स्मरण करना है कि स्वराज एक मार्ग है, मंजिल नहीं।





## बहुजन स्वराज और चुनौतियाँ

-रामदुलार

### बहुजन व उसका आधुनिक सन्दर्भ

बहुजन का अर्थ बहुसंख्यक लोग "या आम जनता" होता है। बुद्ध के उपदेशों में समाज के व्यापक वर्ग को सम्बोधित करने के लिए प्रयोग हुआ, जिसमें समाज के निचले और मध्यम वर्ग शामिल थे। भारतीय परिप्रेक्ष्य में बहुजन-समाज पालक, सृजनकर्ता, शिल्पकार व निर्माणकर्ता की भूमिका में रहा है।

ऐतिहासिक रूप से "बहुजन" शब्द का महत्वपूर्ण और आधुनिक सन्दर्भ में प्रयोग 19वीं और 20वीं सदी में देखा जाता है, विशेषकर सुधार आन्दोलनों के दौरान। भारत में इसका श्रेय ज्योतिराव फुले को दिया जाता है, जिन्होंने 19वीं सदी में "सत्य शोधक समाज" (1873 में) के माध्यम से बहुजन शब्द का उपयोग समाज के शोषित और वंचित वर्ग (जैसे शूद्र, अति शूद्र और पिछड़े वर्गों को) बहुजन के रूप में संबोधित किया। ये समाज के बहुसंख्यक लेकिन उत्पीड़ित वर्गों का प्रतिनिधित्व करते थे, जबकि डा० अम्बेडकर के नेतृत्व (20वीं सदी) में यह शब्द सामाजिक न्याय और समानता के आन्दोलन का प्रतीक बना।

महात्मा गाँधी जी ने अपनी पत्रिका "हरिजन" (11 फरवरी 1933 में शुरू) में उल्लिखित बहुजन हित या बहुजन समाज का उपयोग किया, जिसे 1933 से 1940 के बीच सामाजिक सुधार और अस्पृश्यता उन्मूलन के सन्दर्भ में उनके लेखन में देखे जा सकते हैं। डा० अम्बेडकर के अपने समाचार पत्रों, जैसे "बहिष्कृत भारत" और "जनता" व उनके भाषणों और लेखों में सामाजिक न्याय और समानता के दर्शन का बहुजन समाज हिस्सा रहा। डा० अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक *Who were the Shudras, Annihilation of Caste, Pakistan or the Partition of India*, में बहुजन शब्द का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उल्लेख किया है, विशेषकर सामाजिक संरचना और उत्पीड़न के विश्लेषण में।

### बहुजन चेतना के आन्दोलन

आधुनिक युग में केरल के अय्यंकाली (1863 से 1941) ने तत्कालीन रियासत के जातिग्रस्त समाज में दबे-कुचले वर्गों के अधिकारों के लिए आन्दोलन का नेतृत्व किया, आन्ध्र प्रदेश में भाग्य रेड्डी वर्मा (1888 से 1939) द्वारा देवदासी प्रथा के विरोध में आन्दोलन चलाकर इस प्रथा को गुनाह घोषित करने के लिए निजाम को मजबूर किया. महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले ने सत्य शोधक के माध्यम से एक वर्ग विशेष के वर्चस्व और भेदभाव, अत्याचार के खिलाफ एक सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलन किया। मद्रास में रामास्वामी नायकर (1879-1973) द्वारा समाज के कमजोर वर्गों और महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्ष एक सशक्त आन्दोलन के रूप में डा० अम्बेडकर से पूर्व स्थिति में मिलते हैं। डा० अम्बेडकर पहले व्यक्ति थे जिन्होंने दलितों की चेतना को राजनीति से जोड़कर बहुजन समाज को एक नई दिशा दी। आजाद भारत में बहुजन राजनीति को विकसित होने का पूरा परिवेश काशीराम के बहुजन समाज पार्टी से मिला. उनके सामाजिक/सांस्कृतिक आन्दोलनों ने जागरूक किया और विशेषकर उनके द्वारा दिए गए नारे "जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी भागीदारी" ने बहुजन में नई ऊर्जा दी.

### सत्ता बनाम स्वराज

स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक और सामाजिक चेतना का विकास बहुजन समाज में प्रबल हुआ और बहुजन समाज केन्द्रीय व राज्य स्तर पर राजनीतिक सत्र में सशक्त भागीदारी हासिल किया, जिससे राजनीतिक भागीदारी बढ़ी, राजनीतिक (नई) पार्टियों का उदय हुआ तथा कानूनी और संवैधानिक अधिकार के साथ-साथ आरक्षण की नीतियों के कारण शिक्षा, रोजगार और सरकारी पदों पर बहुजन समाज की पहुंच बढ़ी, बावजूद इसके आज तक सम्पूर्ण स्वराज का सपना वास्तविक रूप से प्राप्त नहीं हो सका ! नई राजनैतिक पार्टियों और जातिगत संगठनों के कारण बहुजन स्वराज की अपेक्षा जातीय महत्वाकांक्षा और सत्ता पाने की ललक अधिक प्रबल हो गई। जातीय वर्चस्व और पहुंच के कारण बहुजन स्वराज के उद्देश्य में पलीता लगा दिया है और बहुजन समाज के अन्दर जाति बनाम जाति की गुटबन्दी दिखाई पड़ने लगी है।

बहुजन स्वराज के लिए जाति विकास के बजाय सामूहिक विकास पर बल देने की जरूरत है. बहुजन समाज में अल्पसंख्यक व अधिक बहिष्कृत जातियों का

भी प्रतिनिधित्व दिखाना होगा। "जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी भागीदारी" का नारा जातीय स्वरूप ले लिया है, अब जिनकी जातिगत संख्या अधिक है, उनकी उपस्थिति प्रबल है।

बहुजन स्वराज हेतु सभी पीड़ित शोषित जातियों की भागीदारी के सन्दर्भ में चिन्तन करना होगा, जय प्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रांति, डा० अम्बेडकर की समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और न्याय व ज्योतिबा फुले के सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक विकास, लिंग समानता को भी उसके सन्दर्भ में देखना होगा। केवल राजनैतिक सत्ता प्राप्ति से मात्र बहुजन स्वराज का सपना पूरा नहीं हो सकता।

आज भी जाति के आधार पर छुआछूत और अत्याचार देश में चरम स्तर पर है। केन्द्रीय गृह राज्य मंत्री अजय कुमार मिश्रा ने मार्च 2023 ई० को संसद में बताया कि देश भर से साल 2022 में दलितों के खिलाफ अपराध के 57,582 मामले और आदिवासियों के खिलाफ 10064 मामले दर्ज किये गये। यह साल 2021 की तुलना में क्रमशः 13.1 प्रतिशत और 14.3 प्रतिशत अधिक है। उत्तर प्रदेश में ऐसे मामले 15368 दर्ज किये गये, पिछड़ों की स्थिति भी कमोबेश उसी के आसपास है। कहने में हिचक नहीं कि विभिन्न राजनैतिक पार्टियों के माध्यम से आज संसद में बहुजन समाज से लगभग दौ सौ से अधिक और उत्तर प्रदेश विधान सभा में भी लगभग दौ सौ से अधिक विधायक हैं, इसके बावजूद जातिगत अपराध और हिंसा में वृद्धि हुई है। संवैधानिक चुनौतियां वर्तमान व भविष्य के डरावने सपने दिखा रहा है। शायद ही कोई राजनेता कुछ को छोड़कर इस मुद्दे पर मुखर है, इसीलिए कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण स्वराज का सपना अभी पूर्ण नहीं हुआ है, इन चुनौतियों से निपटने के लिए वैचारिक एकता व गोलबंदी के माध्यम से सामूहिक संघर्ष जरूरी है, जिसके द्वारा ही बहुजन समाज के सम्पूर्ण स्वराज का सपना पूर्ण होगा।



## सभ्यतागत राज्य और बहुजन स्वराज

-गिरीश सहस्रबुद्धे

### प्रस्तावना

अमेरिका में इस वर्ष (2025) जनवरी में ट्रम्प सरकार के सत्ता में आने के बाद वैश्विक व्यापार और राजनीति में परिवर्तनकारी घटनाएं तेज हो गईं। पिछले दशक से विश्व में अनेक देशों में राष्ट्र-राज्य (नेशन-स्टेट) की बनावट के बारे में लेकर राजनीतिक बहस चल रही है। हाल ही में (1 सितम्बर) आयात करों को लेकर अमेरिका की तानाशाही के माहौल में चीन के शहर तिआनजिन में समाप्त हुई शांघाई सहकार संगठन (SCO) की बैठक ने बहुध्रुवीय विश्व (मल्टीपोलर वर्ल्ड) के आगमन का डंका पीट दिया। बैठक में भारत की भागीदारी महत्वपूर्ण मानी गई। भारत सहित इस संगठन में शामिल दो और बड़े देश, चीन और रूस, सभ्यतागत राज्य (सिविलिजेशनल-स्टेट) की बात कर रहे हैं। ब्राज़ील जैसे कुछ अन्य देशों के साथ इन देशों के ब्रिक्स संगठन ने विश्व की मुद्रा-व्यवस्था में अमेरिकी डॉलर के दबदबे को ललकारा है। तिआनजिन में भी एस.सी.ओ. विकास बैंक की स्थापना का निर्णय एक ठोस कदम माना जा रहा है। कई देश इसे चीन द्वारा अपनी मुद्रा युआन का दबदबा बनाने के प्रयास के रूप में भी देख रहे हैं। बहुध्रुवीय विश्व में आपसी व्यापार और मुद्रा-प्रणाली का स्थायी मॉडल अभी बनना है। भारत और यूरोप के देश इस स्थिति में रणनीतिक स्वायत्तता की बात कर रहे हैं। सारी अनिश्चितताओं के बावजूद इसमें संदेह नहीं कि सभ्यतागत राज्य की कल्पना और वास्तविकता आगे बढ़ेगी।

### सभ्यतागत राज्य

सभ्यतागत राज्य की जो समझ आगे आ रही है उसमें बहुजन का स्थान कहीं नजर नहीं आता। इस राज्य की चर्चा को आगे ले जाने में भारत का सत्ताधारी संघ-परिवार अगुआई करता रहा है। भारतीयता की बात से भारत की सभ्यता की जो समझ जोड़ी जा रही है वह अंग्रेजियत से लबालब है। यह कमोबेश उसी तरह की समझ है जो अंग्रेजी शासन के साथ यूरोपीय विचारों से प्रेरित भारतीय समाज के अध्ययन और शोध के माध्यम से दुनिया में प्रचारित हुई, और जिसे स्वतंत्रता के बाद भी देश के

विश्वविद्यालयों में शिक्षित प्रबुद्ध वर्गों ने जाने-अनजाने स्वीकार कर लिया. इसी वजह से उस काल के अनुरूप स्वतन्त्रता के बाद शुरूआती समाजवादी रुझान कायम करने में भी कुछ आसानी अवश्य हुई होगी. इस समझ के मुताबिक भारत की प्राचीनता, सभ्यता का सातत्य, साहित्य इन सबमें 'आध्यात्मिक-तत्त्व' प्रधान है, और 'भौतिक-तत्त्व' कमजोर. मतलब मोटे तौर पर ज्ञान का रुझान आध्यात्मिक है. सभ्यतागत राज्य का वर्तमान नैरेटिव इसी 'आध्यात्मिकता' में भारत की सांस्कृतिक (cultural) विविधता को एकता में पिरोने का सूत्र बताता है. लेकिन यह विविधता तो बहुजन समाजों की देन है. इसका अर्थ यह हुआ कि जिनके जीवन में प्रकट रूप में विविधता मौजूद है उस बहुजन समाज में एकता बनाए रखने का कार्य, और उसका निर्देशन, उनका अपना नहीं बल्कि इन ग्रन्थों को जाननेवाले पंडितों का है - या कहें कि उनके माध्यम से सभ्यतागत राज्य का. तो सभ्यतागत राज्य खुले आम अभिजनों का राज है, यही मतलब हुआ. साथ ही यह एकता इन अभिजनों की कल्पना के राष्ट्र के वैभव और ताकत की सेवा में लगनी है, न कि बहुजन समाज की अपनी खुशहाली के लिए. भारतीय सभ्यता का यह नजरिया इतिहास, स्कूलों की किताबें और अब उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों में कायम करने के पुरजोर प्रयास हो रहे हैं. आश्चर्य नहीं कि सभ्यतागत राज्य का नैरेटिव यह मानता है कि समाज सञ्चालन का समूचा भारतीय ज्ञान संस्कृत ग्रन्थों में समाया हुआ है.

लेकिन आधुनिक पश्चिमी भौतिक ज्ञान (साइंस) के सूक्ष्म आदिरूप और शुरूआती सूत्र भी इन्हीं ग्रन्थों में मौजूद बताये जा रहे हैं. ऐसी कहानियों की बिना पर, दो बातें की जा सकती हैं. एक तो स्वाधीनता के बाद की सभी सरकारों की ही भाँती देश की प्रगति की सारी दारोमदार वैश्विक वित्त और पश्चिमी साइंस-टेक्नोलॉजी पर धर दो, और इसके लिए देश के सारे संसाधन भारी मात्रा में इस काम में खर्च करो. और दूसरा यह कि पहले की सरकारों के समाजवादी / उदारवादी लोकतंत्र के स्थान पर अब भारतीयता तथा आध्यात्मिकता की राजनीति करो! इसका अर्थ यह हुआ कि सभ्यतागत राज्य के पीछे ज्ञान का जो मॉडल है वह आधुनिक देश की प्राचीन सभ्यता के संगठित अभिजात्य-ज्ञान और साइंस-टेक्नोलॉजी के 'मेल-जोल' का

मॉडल है। हालांकि यह अभी बन रहा है, यह स्पष्ट है कि इसमें बहुजन ज्ञान के लिए बराबरी और सम्मान का कोई स्थान नहीं है।

### बहुजन-समाज के लिए चुनौती

यही कारण है कि सभ्यतागत राज्य की जो समझ आगे आ रही है उसमें बहुजन का स्थान कहीं नजर नहीं आता। यह कहना गलत नहीं होगा कि सभ्यतागत राज्य हो, या राष्ट्र-राज्य (नेशन-स्टेट), जहाँ तक बृहत् समाज में बहुजन के हक में जो पहल और सम्मान बनता है उसका सवाल है, उसमें कोई फर्क नहीं है। इससे यह भी साफ है कि जब सभ्यतागत राज्य के समर्थक यह कहते हैं कि समाज को समझने का उनका तरीका सभ्यतागत है जो कि पश्चिमी तरीके से अलग है – जहाँ से वे सभ्यता शब्द को राज्य के साथ जोड़ते हैं – तो उनका मतलब समाज से नहीं बल्कि मात्र समाज के राज्य के साथ के संबंधों भर से है। शायद इतना ही कि ये सम्बन्ध परिभाषित करने की भाषा अलग होगी। अर्थात् समाज के बारे में उनकी सारी सोच शक्तिशाली, केंद्रीकृत सभ्यतागत राज्य के परिप्रेक्ष्य के घेरे में है। जाहिर है कि यह घेरा कितना ही बड़ा या उदार क्यों न हो जाय भारत के बहुजन समाजों का वजूद इसमें समा पायेगा यह तो कतई संभव नहीं है। सभ्यतागत राज्य बहुजन समाज की खुशहाली में हर आधुनिक स्टेट की तरह का रोड़ा तो है ही। लेकिन इसके अलावा वह एक और अर्थ में और भी बड़ी चुनौती बहुजन समाज के सामने रखता है। वह यह कि जिस सभ्यता के वे निर्माण-कर्ता रहे हैं, जो वास्तव में बहुजन सभ्यता है, उसी को झुठलाकर उनसे छीना जा रहा है। दर असल यह बहुजन ज्ञान, अर्थात् लोकविद्या को नकारने का चरम रूप है क्योंकि यह सभ्यता तो वास्तव में लोकविद्या का प्रकट रूप है। अर्थात् बहुजन समाज को बहुजन सभ्यता का नैरेटिव खड़ा करने की चुनौती स्वीकारना होगा।

बहुजन सभ्यता के बारे में सोचने में स्वायत्तता और स्वराज की सोच अहम् है। इस लेख में हम आगे इस पर संक्षेप में कुछ बात रखेंगे।

### स्वायत्तता, स्वायत्त समाज

जिस नेशन-स्टेट को यूरोप में सन् 1762 में रूसो ने ‘आम लोगों की इच्छा’ कहा, उसीको सन् 1848 में मार्क्स ने ‘वर्ग-सत्ता का औजार’ बताया। लगभग उसी काल में इस स्टेट की हमारे देश से जो पहचान बनी वह है “समाजों की स्वायत्तता

तोड़कर उनकी संपत्ति लूटने का औजार”। इस काम के लिए अंग्रेजों ने यहाँ अपने तरीके के भूमि कानून और भूमि-करों की व्यवस्था बलपूर्वक कायम की। इससे पहले उन्होंने यहाँ के समाजों को समझने के लिए गाँवों में सर्वे कराये। गाँवों के अपने सारे व्यवहार जिन स्थानीय व्यवस्थाओं के माध्यम से चलते यहाँ अंग्रेजों ने देखे उनमें विलक्षण विविधता उनको दिखी। (देखें: चेंगलपट्टू दस्तावेज: 1767-1774 में भारत का बहुजन-समाज, पृ. 14, ‘सुर साधना’ अंक 8, अगस्त-सितम्बर 2025)। इन सर्वे की रपटों से यहाँ के समाजों का जो चित्र उभरता है वह अधिकतर तो - शायद अंग्रेजों के सक्रिय प्रयासों की वजह से भी - दस्तावेजों में दबा रहा, और विद्वानों के अध्ययन और इतिहास लेखन से भी नदारद रहा। समाजों का यह चित्र, जो बहुजन समाजों की स्मृति में किन्हीं रूपों में बना रहा, ऐसे समाजों का है जिन्हें स्वायत्त समाज कहा जा सकता है।

स्वायत्तता यह कोई सामाजिक ‘स्थिति’ नहीं है, बल्कि स्थितियों को बदलने की, नयी स्थितियाँ का, नयी चीजों का, नये का निर्माण करने की - अर्थात् सृजन की - क्षमता का स्रोत है। यह स्रोत सभी मनुष्यों में एक सा है। लेकिन सभी समाजों में नहीं। समाज मनुष्य द्वारा सृजन की क्रिया में अन्य मनुष्यों तथा प्रकृति के साथ होनेवाले संवाद और व्यवहार पर खड़ा है। यह समाज के अंदर और बाहर की जिन स्थितियों में होता है, वे समाज की सृजन-क्षमता प्रभावित करती रहती हैं। ये प्रक्रियाएं समाज में साझा ज्ञान का निर्माण और उसमें बढ़ोत्तरी करती रहती हैं।

जिन समाजों में इस समझ की सार्वजनिक मान्यता है कि हर व्यक्ति तथा हर सामाजिक इकाई की स्वायत्तता संजोकर ही आपसी सामाजिक संबंध सबके लिए हितकारी और सहज हो सकते हैं, वे समाज स्वायत्त समाज हो सकते हैं। यह नहीं कि ऐसे समाज में आपसी टकराव नहीं होते। लेकिन किन्हीं भी दो इकाइयों के बीच किसी भी प्रकार के टकराव का अंतर्गत हल निकालने के तरीके वह समाज इजाद कर लेता है। एक तरह से कह सकते हैं कि इन इकाइयों की स्वायत्तता का आदर करते हुए उनके परस्पर द्वंद्वों का हल निकालने के रास्तों की कल्पना करने के लिए उस समाज के लोगों को किसी बाहरी हस्तक्षेप की आवश्यकता महसूस नहीं होती - बल्कि ऐसे हस्तक्षेप को आम तौर पर पसंद नहीं किया जाता। हमारे इर्द-गिर्द के उन छोटे समाजों में, जो अपने व्यवहार आप निर्देशित करते हैं, यह आम अनुभव की बात है। अंतर्गत

समस्याओं का हल भी समाज की सृजन की क्षमताओं का ही एक हिस्सा है, जो सही-गलत के विवेक का, न्याय, त्याग और भाईचारे जैसे सामाजिक मूल्यों का सृजन कर उस समाज के ज्ञान में इजाफा करता है. स्वायत्त समाज बनते जाने की प्रक्रिया ऐसे ही ठोस रास्तों की कल्पना और स्वीकार का सिलसिला है. यह उस समाज के नित्य नए निर्माण की वह प्रक्रिया है जो उसकी आंतरिक गति को सतत अंकित करती रहती है, और उसकी स्वायत्तता का प्रमाण देती रहती है.

जाहिर है कि ऐसे समाजों में एक-तरफा बाहरी हस्तक्षेप जो सामान्य तौर पर बल और हिंसा के साथ ही होता है तुरंत अन्याय और विषम व्यवहार के सवाल खड़े करता है और स्वायत्त प्रक्रियाओं को तोड़ने का ही काम कर सकता है. देश में अंग्रेजी हस्तक्षेप ने बहुजन समाज के साथ यह किया. किसान आन्दोलन पिछले पचास वर्षों से यह कह रहा है कि 1947 में गोरे अंग्रेज जाकर काले अंग्रेजों का राज आया. मतलब स्वतंत्र नेशन-स्टेट बहुजन समाजों के साथ वही करता रहा है जो पहले होता था. यह समझ लेना जरूरी है कि सभ्यतागत राज्य बाकी जिन भी अर्थों में अलग हो, इस अर्थ में भिन्न नहीं है.

### स्वराज

स्वराज वह व्यापक धारणा है जो हमारे समाज में परंपरा से चली आई है. कभी स्वधर्म की चर्चा में, कभी स्वदेशी की, तो कभी स्व-शासन की, और कभी जिम्मेदारी बनाम अधिकार की कश्मकश के निराकरण की चर्चा में बात स्वराज की बातें उठती रही हैं. एक तरह से कला-साहित्य, समाज, और आर्थिक-राजनीतिक क्षेत्रों में विचार का जामा स्वधर्म-स्वशासन-स्वदेशी-स्वराज का ही रहा. आनंद कुमारस्वामी जैसे कला-विचारकों ने स्वदेशी और स्वराज पर विस्तृत चिंतन किया. स्वतंत्रता संग्राम के साथ स्वराज की बात खुलकर चर्चा में आई. लोकमान्य तिलक ने इसे जन्मसिद्ध अधिकार माना, तो अरविंद घोष ने हमारे देश के पारंपरिक जीवन से इसे जोड़ा और इसके आध्यात्मिक पहलू पर भी ध्यान खींचा. गांधी जी ने तो अपनी पुस्तक 'हिन्द-स्वराज' में पश्चिमी देशों की सभ्यता पर तीखी मौलिक आलोचना कर स्वराज का सभ्यतागत अर्थ दुनिया के सामने प्रकट किया.

जाहिर है स्वराज के अनेकों आयाम हैं और वर्तमान में बहुजन नैरेटिव खड़ा करने के काम में हमें कई प्रकार से और नई दिशाओं से इसको समझने – स्वीकारने



की जरूरत है. एक तरीका स्वायत्तता के दृष्टिकोण का भी है. इस दृष्टि से देखा जाय तो स्वराज स्वायत्त समाज की नित्य नये निर्माण की प्रक्रिया है. यह प्रक्रिया प्रत्येक सामाजिक इकाइयों की अपनी स्वायत्तता के खुले सक्रिय स्वीकार के साथ उनके आपसी सम्बन्ध और व्यवहार बनाते-बढ़ाते जाने की प्रक्रिया है. यह सक्रिय स्वीकार स्वराज-चेतना का एक आयाम माना जा सकता है. इस दृष्टि से स्वराज स्वायत्त इकाइयों की स्वायत्तता है. एक तरह से स्वराज हर स्वायत्त समाज का स्वभाव है.

### बहुजन स्वराज

अगर मान भी लें कि स्वराज के चिंतन में स्वायत्तता की बात अहम है तो भी वर्तमान परिस्थितियों में बहुजन की अगुआई में स्वराज की स्थापना, या बहुजन स्वराज की कल्पना किस तरह से की जाय?

प्रस्थापित सामाजिक-राजनीतिक सोच, चाहे वह परिवर्तन की सोच ही क्यों न हो, बहुजन समाज में ऐसी कोई पहल या ताकत नहीं देख पाती जो किसी भी सामाजिक परिवर्तन के लिए जरूरी है. इसलिए इस सोच की सिफारिश यह है कि वर्तमान व्यवस्था में ही ताकत के प्रशासनिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थानों पर बहुजन काबिज हों. अनुभव कहता है कि जो काबिज हो जाते हैं वे या तो मौलिक अर्थों में अधिक कुछ कर नहीं पाते, या अपने समाज के नहीं रहते. उल्टे ऐसी ताकत जिनके पास बढ़ती गई है वे बहुजन की स्वायत्तता को नष्ट करने का हर प्रयास करते दिखाई देते हैं. स्वायत्त समाज और स्वराज के लिए ऐसी ताकत बेमानी ही नहीं, हानिकारक है. यह तो छल और कपट की ताकत है.

स्वराज की प्रेरणा तो समाज की, और उस समाज के हर व्यक्ति की अपनी स्वायत्त क्षमताओं को हरकत में लाने की सहज प्रवृत्ति से ही आती है. बहुजन समाज अपनी क्षमताओं में ही अपनी ताकत का इजहार कर सकता है. और कहीं नहीं. ये क्षमताएं समाज की परंपरा में चलती आती हर किस्म की स्वायत्त निर्माण क्रियाओं से अवगत ज्ञान में, बहुजन सभ्यता में निहित हैं. समाज और प्रकृति की हर इकाई की स्वायत्तता का आदर इस ज्ञान की सीख है. इसका व्यावहारिक रूप न्याय, त्याग और भाईचारा के सामाजिक मूल्य हैं. ढाई-सौ वर्षों में विदेशी और घरेलू उपनिवेशवाद और विस्तारवाद द्वारा देश के बहुजन समाजों की भारी लूट-खसोट की गई. लेकिन

हर प्रकार की हानि के बावजूद बहुजन ज्ञान में आज भी अहिंसा और भाईचारे के साथ समाज को टिकाए रखने की ताकत है.

बहुजन स्वराज की माँग यह है कि बहुजन समाज के जन-आन्दोलन बहुजन-ज्ञान को निर्माण की अपनी वास्तविक ताकत के रूप में पहचानें, इस ज्ञान के अलग-अलग पहलू सारे समाज के सामने लाने का कार्य हो, और बहुजन-ज्ञान के बल पर स्वराज निर्माण का दावा हो. इससे बहुजन सभ्यता का नया नैरेटिव खड़ा करने का काम आगे बढ़ेगा. यह बहुजन की अपनी स्मृतियों, ज्ञान, परम्पराओं के जरिये उनकी अपनी जुबानी और उनके अपने नेतृत्व में ही संभव है. ऐसा नैरेटिव भावी स्वस्थ स्वायत्त समाज की छबि प्रस्तुत कर सकेगा और बहुजन-स्वराज की पेशकश करेगा.



## लोकतंत्र और लोक का तंत्र

### रचनात्मक कार्यक्रम एक नमूना

-लक्ष्मण प्रसाद

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश माना जाता है। यदि यह देश लोकतंत्र के नाम से जाना जा रहा है, तो "लोक का तंत्र" चरितार्थ होना चाहिए। लेकिन यहाँ हर आवश्यकता के लिए सरकारी अथवा प्रशासनिक कार्यालयों से लम्बी कागज़ी कार्यवाही और बहुत पैसा खर्चने के बाद थोड़ा-सा कुछ हो पाता है। वर्तमान समय में प्रशासन, न्याय, राजनीति, स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार अर्थ, समाज इत्यादि की व्यवस्थाएं और इन व्यवस्थाओं से लोक की अपेक्षाएं विलोमानुपाती हैं। हमें लोकतंत्र नहीं लोक का तंत्र बनाना है।

"लोक का तंत्र" में तो लोक की पहल से व्यवस्थाओं को आकार मिलना चाहिए। यानि लोक के मार्फत व्यवस्थाओं का वितरित ढांचा होना चाहिए। ऊपर से नीचे तक 'राज सत्ता' एक ही स्थान से नियंत्रित न होकर सत्ता लोक में जन-भागीदारी पर आधारित होनी चाहिए। तभी देश और समाज में जितनी विभिन्नता है, उन सभी की भागीदारी भी सुनिश्चित होगी। सभी हाथ को काम, सभी काम को न्यायपूर्ण दाम तभी मिलने की संभावना बनती है। भाईचारा, न्याय, एक दूसरे के साथ सहयोग जैसे ठोस और वास्तविक आधार पर ही "लोक का तंत्र" बन पाता है।

इस लोकतंत्र में 'लोक का तंत्र' कैसे स्थापित हो, इस विषय पर विचार प्रस्तुत कर रहा हूँ।

### लोक के ज्ञान से ही लोक का तंत्र सम्भव है

'लोक का तंत्र' लोक के अनुरूप तभी बनेगा जब उसमें लोक का ज्ञान शामिल हो। बहुजन-समाज के पास अपनी व्यवस्था संचालित करने का ज्ञान होता है। यदि बाहर से कोई कितना भी प्रकांड विद्वान आकर व्यवस्था को बनाएगा, तो निश्चित रूप से और अधिक बिगाड़ ही देगा। व्यवस्था की सही समझ, सही अनुभव लोगों की आकांक्षाएं इत्यादि विद्वता से नहीं, बल्कि उसकी समझ कर्म और अनुभव से आती है। भारत एक लम्बे समय से किसान, कारीगर और आदिवासी समाजों से तथा तमाम तरह की दूकानदारी और सेवाकार्य में लगे समाजों से बना है। इन समाजों में पंचायत

की व्यवस्थाएं प्रचलित रही हैं। विविध समाजों ने अपनी जरूरत का ज्ञान पंचायत के मार्फत एक दूसरे को साझा किया। खेती करने के नए-नए तौर तरीके, औजार, मिट्टी, अलग-अलग मिट्टी के लिए अलग-अलग तरह की फसल, मौसम, पानी इत्यादि की गहरी समझ, औषधि इत्यादि का ज्ञान खेती में आने वाले गंभीर समस्याओं का समाधान, अतिवृष्टि-अनावृष्टि, बाढ़-सूखा, महामारी इत्यादि से मुकाबला, सामाजिक संबंध, इत्यादि से लेकर गीत, संगीत, नाटक, भाषा आदि का ज्ञान लोगों ने एक दूसरे से साझा करके मजबूत सामाजिक ताना-बाना बनाया। इस ताने-बाने में सत्ता का कोई एक केन्द्र रहा हो ऐसा नहीं मिलता। यानि 'लोक का तंत्र' का एक प्रकार इन पंचायतों के जाल में रहा।

### पंचायत का नवीनीकरण हो

देशभर में लोकतंत्र के तहत गाँवों में पंचायतें तो हैं लेकिन इनके पास कोई अधिकार नहीं है, जिससे कि ये स्थानीय लोगों के लिए कोई नीति और कार्ययोजना बनाकर संचालित कर सकें। केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों की योजनाओं को क्रियान्वित करना ही पंचायतों का मुख्य कार्य रह गया है। 'लोक का तंत्र' में ग्राम पंचायत अथवा नगर पंचायत सबसे सशक्त और स्वायत्त होनी चाहिए। इन पंचायतों में बहुजन-समाज के लोग सर्वाधिक संख्या में भागीदार होते हैं। इसलिए बहुजन-समाज इन पंचायतों को लोकोन्मुख (बहुजनहिताय) बनाने की दिशा में ले जाने की काबिलियत भी रखते हैं।

वर्तमान समय में इस दिशा में सार्वजनिक बहस को ले जाने में वाराणसी के दो वार्डों का उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ। वाराणसी ज्ञान पंचायत के तहत वाराणसी के दो वार्डों में ज्ञान-पंचायतों का आयोजन कर इस वार्ता को चलाने का प्रयास है। पहला है- सलारपुर- दीनापुर वार्ड और दूसरा है- सरैया-जलालीपुरा वार्ड। प्रयोग के तौर पर इन दोनों वार्डों की स्थानीय व्यवस्थाओं को स्थानीय लोकविद्या यानि वार्ड के निवासियों के ज्ञान की भागीदारी से गठित कर पाने की संभावनाओं पर ज्ञान-पंचायतें हो रही हैं। इन ज्ञान पंचायतों में वार्ड के सभी जगह से बहुजन-समाज के ज्ञानी शामिल होते हैं। एक समिति बनी है। इस समिति में हर तरह के काम करने वाले लोग हैं। (देखें 'सुर साधना' पत्रिका के अंक [www.vidyaashram.org](http://www.vidyaashram.org) का प्रकाशन पेज) खुली पंचायत में शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, निर्माण, बिजली, पानी इत्यादि हर

मुद्दों पर लोग अपने बात रखते हैं, और समस्याओं के समाधान के लिए लोकविद्या के बल पर नीति बनाने का प्रयास करते हैं। वार्ड भर के लोगों का आपस में एक स्थान पर मिल-जुल कर वार्ता करने से बहुत सी समस्याओं का सहज हल भी निकल सकता है। इन समितियों में सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर भी गंभीरता पूर्वक बातचीत की जाती है। समाज व देश के समसामयिक ज्वलंत मुद्दों पर भी इस ज्ञान-पंचायत में वार्ताएं होती हैं। लोग खुलकर अपने-अपने विचार रखते हैं। इस गतिविधि को 'लोक का तंत्र' या स्वराज बनाने की दिशा में एक पहला कदम भी माना जा सकता है।

यह शुरुआत स्थानीय इकाई से की गई है। प्रशासनिक, न्यायिक, आर्थिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य, स्थानीय संसाधनों इत्यादि सभी क्षेत्रों में स्थानीय लोगों और इकाइयों (वार्ड ज्ञान पंचायत) के निर्णय से कार्य होना ही वास्तव में लोक का तंत्र यानि स्वराज है। ये सभी गतिविधियां गैर-दलीय राजनीति के अनुसार चलनी चाहिए। दलीय राजनीति मुनाफे और प्रतिस्पर्धा पर आधारित होती है। स्वराज की व्यवस्थाएं सहयोग और सबकी खुशहाली पर आधारित होती हैं। प्रतिस्पर्धा नफरत को जन्म देती है।

"लोक का तंत्र" यानि स्वराज इन जैसी परिकल्पनाओं पर आकार लेगा।



## भारत की ऊर्जा-हसरतें और स्वराज

-एकता और रवि शेखर

भारत की ऊर्जा जरूरतें आज विश्व की सबसे बड़ी चुनौतियों और संभावनाओं में से एक हैं। तीव्र गति से बढ़ती आबादी, शहरीकरण और औद्योगिकरण ने ऊर्जा की मांग को लगातार बढ़ाया है। भारत वर्तमान में कोयले और आयातित तेल पर काफी हद तक निर्भर है, जिससे न केवल प्रदूषण और ग्रीनहाउस, गैस उत्सर्जन बढ़ते हैं, बल्कि ऊर्जा सुरक्षा भी प्रभावित होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में भरोसेमंद और किफायती ऊर्जा तक सीमित पहुँच, वहीं शहरी क्षेत्रों में बिजली और परिवहन के लिए उच्च खपत का दबाव, दोनों मिलकर ऊर्जा संतुलन को जटिल बनाते हैं। इस जटिलता के समानांतर हमारे देश के नीति नियंत्रकों पर एक और जिम्मेदारी है कि वे भारत की विकास यात्रा को टिकाऊ और समावेशी बनाएं। समय समय पर अनेकों वैश्विक मंचों पर भारत सरकार द्वारा की गयी घोषणाएं और जलवायु परिवर्तन जनित, आंतरिक स्तर पर हर दिन बढ़ती चुनौतियों के कारण यह दबाव बढ़ता ही जा रहा है।

हालिया घटित दो घटनाओं पर नजर डालने से यह समझना आसान होगा कि उपरोक्त दबाव किस प्रकार काम कर रहा है। पहली घटना उस घोषणा से सम्बंधित है, जिसमें भारत सरकार द्वारा अपने नवीन ऊर्जा लक्ष्यों को हासिल करने बाबत समस्त जगत को सूचित किया गया है। सरकार द्वारा जारी सूचना यह बताती है कि निर्धारित समयावधि से पांच वर्ष पूर्व 2025 में ही हमने अपने समस्त ऊर्जा उत्पादन का 50 प्रतिशत हिस्सा नवीन ऊर्जा स्रोतों से सफलतापूर्वक हासिल कर लिया है। इस लक्ष्य को हासिल करने की पूर्व घोषित समयावधि 2030 थी। अपने आप में यह जानकारी बेहद हर्ष का विषय होती, अगर इसे पारंपरिक ऊर्जा साधनों पर बढ़ती निर्भरता दिखाने वाले आंकड़ों से परे रह कर देखा जाए। मसलन, अगस्त और सितम्बर 2025 के दौरान अड़ानी पॉवर को बिहार और मध्य प्रदेश में कुल 3200 मेगावाट और टॉरेंट पॉवर को मध्य प्रदेश में 1600 मेगावाट के कोयला आधारित बिजली घर के लिए अनुबंधित किया गया है। यह ध्यान देने योग्य है कि कोयला आधारित बिजली संयंत्रों के लिए ये अनुबंध हम तब कर रहे हैं जब भारत अपनी नवीन ऊर्जा साधनों की ओर भी तेजी से बढ़ रहा है।

अब दूसरी घटना भी देखी जाए। तेल के आयात पर निर्भरता और शहरी इलाकों में परिवहन से होने वाले प्रदूषण को एक साथ कम करने की दिशा में भारत सरकार ने पेट्रोल में 20 प्रतिशत एथेनोल मिला कर बेचने का निर्णय लिया था। प्रदूषण अभी शहरी इलाकों में कितना कम हुआ है उस पर सरकारी और गैर सरकारी स्रोतों से परस्पर विरोधी आंकड़े मिल रहे हैं, लेकिन तेल आयात के आंकड़े यह बताते हैं कि एथेनोल मिश्रण से आयात निर्भरता कम नहीं हुई, बल्कि इसमें इजाफा हुआ है। विशेषज्ञों का यह भी कहना है कि एथेनोल गाड़ियों के माइलेज पर नकारात्मक असर डाल रहा है, लिहाजा पेट्रोल की खपत कम होने के बजाए बढ़ रही है! परस्पर विरोधी आंकड़ों और तर्कों के होते हुए भी श्रीमान नितिन गडकरी जी के नेतृत्व में परिवहन मंत्रालय ने एथेनोल मिश्रण की सीमा 20 से बढ़ा कर 40 प्रतिशत करने पर विचार शुरू कर दिया है।

यह दोनों उदाहरण दिशा और लक्ष्यहीन ऊर्जा-हसरतों के प्रति लालायित एक देश की व्यथा कहते हैं। यह विडम्बना ही है कि अपने आप को गांधी का देश कहते हुए भी भारत ने ऊर्जा संप्रभुता का रास्ता अंतहीन ऊर्जा उत्पादन में देखा, जबकि ऊर्जा संप्रभुता हासिल करना ऊर्जा उपभोग के प्राकृतिक नियमों पर गंभीरता से मंथन किये बगैर संभव ही नहीं था।

एक दूरदृष्टा इंसान के रूप में गांधी जी स्वराज को भारत की केवल राजनैतिक आजादी से ही जोड़ कर नहीं देखते थे। समाज, उद्योग, कृषि समेत राष्ट्र निर्माण के सभी अन्य क्षेत्रों में भी उन्होंने स्वराज को एक औजार के रूप में देखा और उसे बढ़ावा देने की पेशकश की। वर्तमान में आसन्न पर्यावरणीय समस्याओं से उन्होंने अपने लेखों के मार्फत तभी आगाह किया था। 01.02.1913 को इन्डियन ओपिनियन पत्रिका के अंक में उन्होंने लिखा: “बंबई में रह रहे किसी व्यक्ति को अगर डाक्टर ने साफ़ हवा में सांस लेने को कह दिया तो उसे पैसे खर्च कर के माथेरान (बंबई के पास एक हिल स्टेशन) जाना होगा, ताकि उसे सांस लेने योग्य साफ़ हवा मिल सके। डरबन में रहने वाले किसी व्यक्ति को यह डाक्टरी सुझाव मिले तो उसे भी पैसे खर्चने पड़ेंगे और बेरिया पहुँच कर ही वह शुद्ध हवा पा सकेगा। इसका मतलब है कि जो प्राणवायु हमें प्रकृति से बगैर कोई मूल्य चुकाए मिली, अब उसे ही हासिल करने के पैसे चुकाने पड़ेंगे।” आज, 2025 में, आकड़ों से स्पष्ट है कि भारत के अधिकांश शहर वायु

गुणवत्ता के मामले में जरूरी मानकों को अनदेखा करते हैं। ऐसे में, स्वराज के सिद्धांत हमें भारत के ऊर्जा उत्पादन और उपभोग के वर्तमान पैटर्न में सुधार के रास्ते सुझा सकते हैं। ये सुधार, हमारे देश के लिए न केवल आर्थिक हित में होंगे बल्कि पर्यावरणीय हित भी साधेंगे।

स्वराज के सिद्धांतों को ऊर्जा के संदर्भ में देखें तो चार मूल बातें स्पष्ट होती हैं।

पहला है **विकेंद्रीकरण** – गांधीजी का विश्वास था कि आत्मनिर्भर ग्राम ही भारत की आत्मा है। यदि हर गाँव, हर कस्बा और हर शहर अपनी जरूरत की ऊर्जा स्थानीय स्रोतों से उत्पन्न करे तो केंद्रीकृत ग्रिड व्यवस्था और उसके नुकसान से छुटकारा पाया जा सकेगा। ऐसा करने से न केवल केवल पर्यावरणीय लक्ष्य हासिल होंगे, बल्कि ऊर्जा सुरक्षा भी मजबूत होगी।

दूसरा है **आत्मनिर्भरता** – आज भारत अपनी तेल की जरूरत का लगभग 85% आयात करता है। अगर गांधीजी की सोच पर चला जाता तो हम आयातित तेल और कोयले पर निर्भर बिजली संयंत्रों के बजाये अपनी धरती की धूप, हवा और जैविक संसाधनों से ऊर्जा बनाते।

तीसरा सिद्धांत है **संयम और सादगी** – ऊर्जा का उपभोग असीमित नहीं होना चाहिए। भारत में प्रति व्यक्ति ऊर्जा खपत अभी भी विकसित देशों से कम है, लेकिन शहरी जीवनशैली इसे तेजी से बढ़ा रही है। अगर ऊर्जा दक्षता, बचत और जिम्मेदार उपभोग को नीतियों का केंद्र बनाया जाए तो ऊर्जा संकट काफी हद तक टल सकता है।

चौथा है **न्याय और समानता** – स्वराज का आधार है कि समाज का हर तबका समान अवसर पाए। आज ग्रामीण इलाकों में अभी भी लगभग 30 करोड़ लोग असुरक्षित, अविश्वसनीय और महँगी बिजली आपूर्ति पर निर्भर हैं। बिजली खपत के आंकड़ों को ठीक से समझा जाए तो शहरी और ग्रामीण आबादी के बीच बढ़ती खाई स्पष्ट देखी जा सकती है। उत्पादन के विकेंद्रीकरण से इसका हल निकालना संभव है।

ऐसा नहीं है कि दुनिया में ऐसी सोच पर कभी काम ही न किया गया हो। मसलन, 1990 के दशक में स्विट्जरलैंड के ज्यूरिख विश्वविद्यालय में दो किलोवाट सोसाइटी की संकल्पना तैयार की गयी। उसमें प्रस्ताव किया गया कि यूरोप में रहने



वाला हर एक व्यक्ति दो किलोवाट ऊर्जा का ही उपभोग करे, ताकि उपलब्ध ऊर्जा का समुचित बँटवारा संभव हो सके। हालाँकि, यह विचार भी व्यवहार रूप में यूरोप के अन्दर दिखना अभी शुरू नहीं हुआ लेकिन यह उदाहरण हमें ऊर्जा उत्पादन के लक्ष्य को जरूरत के आधार पर निश्चित कर लेने के सामाजिक-आर्थिक और पर्यावरणीय लाभ समझने में मदद कर सकता है।

आज भारत के सामने चुनौतियां दोहरी हैं। एक ओर अंतिम व्यक्ति तक पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा की उपलब्धता सुनिश्चित करना, वहीं दूसरी ओर चुनिन्दा शहरी केन्द्रों पर उछाल मारती महत्वाकांक्षाओं से निपटना। स्वराज संभवतः एक कठिन डगर तो सुझाता है, पर एक समावेशी समाधान की गारंटी उसी डगर पर है। स्वराज हमें सिखाता है कि ऊर्जा का लक्ष्य केवल विकास की रफ्तार बढ़ाना नहीं हो सकता, बल्कि सामूहिक कल्याण और न्यायपूर्ण समृद्धि सुनिश्चित करना हो सकता है।



## बहुजन-समाज की चेतना का स्वरूप

-सुनील सहस्रबुद्धे

बड़े पैमाने पर शोषित और बहिष्कृत लोग, यानी किसान, मजदूर, कारीगर, स्त्रियां, आदिवासी और ठेले गुमटी वाले, कालेज या विश्वविद्यालय नहीं गए होते हैं। हमें इनकी चेतना के स्वरूप को समझना होगा क्योंकि इन्हीं की चेतना की ताकत पर परिवर्तन के आंदोलन बनते हैं और मुक्ति के रास्ते निखारे जाते हैं। ये लोग वर्गों के रूप में नहीं पाए जाते तथापि समाज के रूप में ही वे अपनी पहचान करते हैं और उसी रूप में अस्तित्व भी रखते हैं।

इन समाजों की चेतना के चार अंग हैं : नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक और ज्ञान आधारित। जबकि इन्हें अलग-अलग पहचानने से समझने की दृष्टि से कुछ मदद हो सकती है तथापि ये एक किस्म की संयुक्त चेतना के रूप में ही अस्तित्व रखती हैं। इन समाजों के जीवन में आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक और उत्पादन व ज्ञान सम्बंधित सारी गतिविधियां इसी संयुक्त चेतना से संचालित होती हैं। अपनी समझ साफ़ करने के लिए एक उदाहरण की मदद ली जाये। चोरी करना गलत है यह नैतिक चेतना है। चोरी करने से सामाजिक ताना-बाना टूटता है यह सामाजिक चेतना है। चोरी करना दंडनीय अपराध है यह राजनीतिक चेतना है। यूरिया से ज़मीन को होने वाले दूरगामी नुकसान को पहचानना ज्ञान आधारित चेतना है। इस तरह हम चेतना के इन अंगों की थोड़ी बहुत व्याख्या करके आम लोगों के जीवन में इन चेतनाओं के आनुपातिक महत्व की पहचान कर सकते हैं।

जिस संयुक्त चेतना का जिक्र ऊपर किया गया है उसे मोटे तौर पर 'स्वराज चेतना' का नाम दिया जा सकता है। कुछ जन आन्दोलनों में इस चेतना को पहचाना जा सकता है।

### ● किसान आन्दोलन :

किसान आन्दोलन किसान परिवारों की आय पर केन्द्रित है। इसकी प्रमुख अभिव्यक्ति कृषि उत्पाद का जायज़, वैज्ञानिक और लाभकारी मूल्य मांगने में हुई है। उद्योग प्रधान आर्थिकी और वर्तमान जीवन शैली में यह संभव नहीं है। किसान

आन्दोलन उस समाज की कल्पना का आग्रह रखता है, जिसमें उसे बाकि लोगों की तरह ही मान और सम्मान हो. आन्दोलन की व्यापकता और संघर्ष का जज़्बा न्याय, त्याग और भाईचारा जैसे मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा की ओर ध्यान ले जाता है. यह आन्दोलन अपने लिए अराजनीतिकता के आग्रह के जरिये ऐसे नये राजनीतिक विमर्श को आकार देने का आधार बना रहा है, जिस विमर्श में राजनीति के साथ सामाजिक सत्ता की पुनर्स्थापना का महत्त्व उजागर हो.

● **सामाजिक न्याय आन्दोलन :**

सामाजिक न्याय की मांग उन लोगों की बराबरी की मांग है, जो औद्योगिक दुनिया के निर्माण में हाशिये पर डाल दिए गए हैं . ये ही बहुजन समाज हैं . इसकी प्रभावी समाज में शामिल होने की मांग का और उसके लिए अपनाई गई नीतियों का विरोध बड़े पैमाने पर शुरू हो गया है. जिसका मूल कारण यह है कि बहुजन समाज ने ज्ञान की अपनी परम्पराओं के आधार पर औद्योगिक समाज के ज्ञान के आधार साइंस को चुनौती नहीं दी है. अपनी लड़ाई ज्ञान के क्षेत्र में ले जाये बगैर सामाजिक न्याय संभव नहीं है. सामाजिक न्याय आन्दोलन के नेतृत्व में इस समझ की कमी है या यह कह लीजिये कि उन्हें बहुजन समाज का केवल ऊपरी हिस्सा ही दिखाई देता है. यह ऊपरी हिस्सा किसी बड़े परिवर्तन या मांग के समर्थन के लिए तैयार नहीं है. यह आन्दोलन बहुजन समाज के नये नेतृत्व और उस राजनीतिक विमर्श की मांग कर रहा है जिसमें बहुजन समाज की ज्ञान की परम्पराओं को स्थान मिले.

● **जल-जंगल-ज़मीन आन्दोलन :**

परंपरागत तौर पर जिन समाजों का नियंत्रण जल, जंगल और ज़मीन पर हुआ करता था वह पहले अंग्रेजों ने और फिर आज़ाद हिन्दुस्तान की सरकारों ने उनसे छीन लिया. वे इन प्राकृतिक संसाधनों पर अपना नियंत्रण वापस मांग रहे हैं. उनके ऐसे नियंत्रण का सीधा अर्थ यह है कि जल, जंगल और ज़मीन का प्रबंधन वे अपने ज्ञान, सामाजिक मूल्यों और विवेक के आधार पर करेंगे. इन समाजों के हितों का समावेश किन्हीं भी लोकतंत्र के नाम पर चलने वाली व्यवस्थाओं में नहीं हो सका है. स्वराज का राजनीतिक विमर्श उनके लिए बड़े रास्ते खोल सकता है.

- **पर्यावरण/जलवायु आन्दोलन :**

पर्यावरण और स्थितिकीय के विनाश के जो कारक हैं वे ही जलवायु परिवर्तन और उसके चलते जीवन ही समाप्त हो जाये, इसके भी कारक हैं। ये कारक प्रमुख रूप से औद्योगिक क्रांति के चलते बनी आर्थिकी और जीवन शैली में निहित हैं। जब तक औद्योगिक क्रांति के ज्ञान-आधार यानी साइंस को चुनौती नहीं दी जाती तब तक इस आर्थिकी और जीवन शैली को बदलने के पुख्ता आधार नहीं बनते। स्वराज चेतना एक समग्र तर्क परंपरा की वाहक है और इस चुनौती को मूर्त रूप देने की क्षमता रखती है। पर्यावरण/जलवायु आन्दोलन एक ऐसे राजनीतिक विमर्श की मांग कर रहा है, जिसमें प्रकृति की पारंपरिक समझ और ज्ञान को उसका न्यायोचित स्थान मिले।

- **स्वराज अभियान :**

स्वराज का विचार वर्ष 2011 के भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन के बाद से सार्वजनिक बहस में दुबारा आ गया। स्वराज और स्वदेशी ये इस देश और सभ्यता की परम्परा के मौलिक विचार हैं, जो महात्मा गाँधी के पहले से राष्ट्रीय आन्दोलन में बहस में भी रहे। महात्मा गाँधी ने उन्हें राजनीतिक अथवा आर्थिक स्तर से उठा कर एक सार्वभौमिक भारतीय दर्शन के अंगों के रूप में पुनर्निर्मित किया। अब स्वराज के नाम से संगठन, अभियान, संस्थाएं आदि चल रहे हैं। स्वराज की यह बहस एक नये राजनीतिक विमर्श को जन्म देती है। यह एक ऐसी बहस होनी है, जो स्वायत्त समाजों के पुनर्निर्माण और स्वशासन के समकालीन के रूपों और मार्गों को उजागर करेगी। यह बात स्वराज आन्दोलन में सक्रिय व्यक्तियों और समूहों को समझना जरूरी है। तुरंत नतीजा हासिल करने की इच्छा के परिणाम प्रतिकूल ही होंगे।

- **लोकविद्या जन आन्दोलन :**

लोकविद्या जन आन्दोलन बहुजन समाज का ज्ञान आन्दोलन है, जिसका प्रमुख ध्येय लोकविद्या के लिए ज्ञान की दुनिया में बराबरी का स्थान हासिल करना है। यह उस व्यवस्था की कल्पना की मांग करता है, जिसमें लोकविद्या आधारित कार्यों पर वैसी ही आय हो जैसी विश्वविद्यालय के ज्ञान के आधार पर होती है। लोकविद्या के विचार और आन्दोलन ने संत परंपरा और बहुजन समाज की दर्शन की

परम्पराओं की ओर ध्यान खींचा है। यह उस राजनीतिक विमर्श को बनाने में भागीदार हो सकता है, जो राज्यसत्ता, व्यक्तिवाद, ज्ञान के पाश्चात्य दर्शन और पूँजी के दबाव में न हो।

परिवर्तन के आकांक्षी व्यक्ति, समूह, संगठन और ढंग-ढंग से सोचने वाले मिलकर एक नया राजनीतिक विमर्श शुरू करें। जन-आन्दोलनों की ज़रूरतों और उनमें निहित दिशाबोध से इस विमर्श के प्रस्थान बिंदु बनाये जायें तो बेहतर होगा। इसे फ़िलहाल स्वराज पंचायत का नाम दिया है।



## स्वराज : प्रासंगिक, आदर्श विचार और व्यवस्था

-लक्ष्मण प्रसाद

### भूमिका :

वर्तमान समय की व्यवस्थाएं अंतरराष्ट्रीय राजनीति और अंतरराष्ट्रीय व्यापार के हित के हिसाब से चल रही हैं। इनमें बहुजन समाज के हित का कोई स्थान नहीं। इस व्यवस्था में जिसके पास जितना ज्यादा धन है, उसके लिए उतना ज्यादा स्थान। यदि इन्हीं व्यवस्थाओं की वकालत करते रहेंगे तो हम अपनी कुल्हाड़ी से अपने पैर ही नहीं जिन्दगी को काटते रहेंगे। स्वराज की व्यवस्था बहुजन की व्यवस्था है। इसमें बहुजन समाज यानि किसान, कारीगर आदिवासी और छोटी पूँजी के दुकानदारों और समस्त स्त्री-समाज की सक्रिय भागीदारी, सम्मान और खुशहाली की चाभी है।

अतीत में बुद्ध के समय से और उसके बाद भी कालांतर में अनेक राजाओं महाराजाओं के समय स्वराज की विचारधारा के अनुरूप कम अधिक काफी व्यवस्थाएं रही हैं। कम से कम इतना रहा है कि स्थानीय व्यवस्थाओं और जीवन की गतिविधियों पर राजाओं-महाराजाओं का इतना ज्यादा दखल नहीं था जिससे आमजन लगातार त्रस्त बना रहे। लेकिन आज के समय ऐसी उम्मीद भी नहीं की जा सकती। अंतरराष्ट्रीय राजनीति आमजन को निगल रही है। इन परिस्थितियों में स्वराज का विचार बहुजन-समाज के लिए मुक्तिदाता, अवसर और खुशहाली प्रदान करने वाला है। स्वराज का विचार सार्वकालिक और सार्वभौमिक है।

स्वराज को न्याय, त्याग, भाईचारा, प्रेम, सहयोग, सहिष्णुता, सच्चाई, ईमानदारी, धैर्य, क्षमा, परोपकार इत्यादि के पर्याय के रूप में देखा जा सकता है। यह न सिर्फ एक उत्कृष्ट विचारधारा है बल्कि एक आदर्श व्यवस्था भी। इसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक समानता और बहुजन समाज के आत्म सम्मान का सूत्र छिपा हुआ है। 'स्वराज' शब्द अपने नाम के अनुरूप सहज अर्थ प्रस्तुत करता है - 'सामान्य जन का अपना राज'। यह राज शासन करने के लिए नहीं बल्कि न्याय स्थापित करने के लिए है। इसमें शासक और शासित दोनों ही सामान्य जन हैं। शासक

और शासित के बीच का भेद खत्म होना स्वराज की पहली पहचान है। जहां ऑर्डर या आदेश शब्द लगभग अप्रासंगिक हो जाता है।

### संत महापुरुषों के विचार में स्वराज :

संत महापुरुषों ने हर युग में अपने नैतिक उपदेश के द्वारा समाज को सतत परिष्कृत करने का प्रयास किया है। उनके उपदेशों को धरातल पर उतारना ही स्वराज लाना है। संत राज्य संचालन के लिए नियम कानून नहीं बनाते, लेकिन जो नियम कानून बनते हैं, यदि उनमें इन संत-महात्माओं के द्वारा बताए गए नैतिक मूल्यों का समावेश कर दिया जाय तो, यह स्वराज की व्यवस्था होगी। यह लोगों के भागीदारी और खुशहाली की व्यवस्था होगी।

महामानव गौतम बुद्ध ने बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय के लिए अनेक सूत्रों को प्रतिपादित किया। इन सूत्रों में ऐसे नीति, नियम और आचरण की बात की गई है, जिससे अधिक से अधिक लोग या सामान्य जन या बहुजन का हित हो सके। इसी परंपरा में संत कबीर, रविदास, नानक, दादू दयाल, तुकाराम, नामदेव, फुले, गाडगे, गांधी इत्यादि अनेकों संत महापुरुषों ने अपने-अपने सूत्रों, रचनाओं के माध्यम से बहुजन कल्याण की बात की है। संतों ने सभी मनुष्य को एक बताया है। ऊँच-नीच, छुआ-छूत के भेदभाव को समाप्त करने वाली जीवन संगठन व्यवस्थाओं का विचार स्थापित किया है। समाज में हो रहे अन्याय-अत्याचार को समाप्त करने तथा लोगों में भाईचारा स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। इन संतों द्वारा बताए गए विचार सिर्फ सामान्य लोगों को अपने जीवन में अपनाने के विषय वस्तु नहीं, बल्कि राज्य की सही व्यवस्था के लिए नीति निर्देशक तत्व भी हैं, जो आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं।

### स्वराज की कसौटियां-

स्वराज का ब्लूप्रिंट प्रस्तुत कर पाना तो थोड़ा कठिन काम है, लेकिन उसकी मोटी-मोटी बातें आसानी से की जा सकती है। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं-

- स्वराज की व्यवस्था में स्थानीय इकाई सबसे महत्वपूर्ण इकाई है। इसके अधिकारों का अतिक्रमण प्रांतीय या केंद्रीय इकाई द्वारा नहीं किया जा सकता। सबका सम्मान और आपस में समन्वय आवश्यक है।

- स्वराज की व्यवस्था में किसी भी विषय पर चर्चा और निर्णय पंचायत में होना और लिए गए निर्णय को भाईचारे और सहयोग से लागू करने का आग्रह रखा जाता है.
- स्थानीय भौगोलिक क्षेत्र में आने वाले समस्त टैक्स स्थानीय स्तर पर जमा और खर्च होना इस व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग है। स्थानीय समाजों की खुशहाली की चाभी इसमें निश्चित कर शेष धनराशि प्रांतीय और केंद्रीय सरकारों को जाने की व्यवस्था का आग्रह होता है। वर्तमान समय में यह व्यवस्था उल्टी है। इससे यह संदेश जाता है कि केंद्र और प्रांत की सरकारें पूरे देश को संचालित करती हैं, बहुजन को खिलाती हैं, शिक्षा-चिकित्सा इत्यादि की व्यवस्था करती हैं; जबकि स्वराज की व्यवस्था में यह संदेश जाएगा कि प्रांत और केंद्र सरकार को स्थानीय सत्ता अपने पैसों से बहुजन के हित संचालित करती हैं।
- स्वराज की व्यवस्था में सभी जाति, सभी धर्म, सभी भाषा-भाषी लोग, अलग-अलग व्यवसाय करने के ज्ञानी, सभी क्षेत्र के लोग, स्त्री और पुरुष, और समस्त विविधता के लोगों को शामिल होना आवश्यक है। इसके बिना स्वराज की परिकल्पना और स्वराज की व्यवस्था पूरी नहीं हो सकती।
- स्वराज का दर्शन 'सहज' है। स्वराज की व्यवस्था में कोई विशिष्ट नहीं हो सकता। सभी सामान्यजन या बहुजन हैं। सहज जीवन में ही आपसी प्रेम, न्याय, त्याग, भाईचारा, सहयोग, संभव है। विशिष्ट जीवन अभिजात का है। विशिष्ट जीवन स्वराज की व्यवस्था में बाधा है।
- स्वराज की व्यवस्था में सभी के ज्ञान और विद्या का समान रूप से सम्मान होना आवश्यक है। ज्ञान के बिना मनुष्य का अस्तित्व संभव ही नहीं है। किसी के ज्ञान को नकारना यानि उसे मनुष्य ही न मानने जैसा है। सभी ज्ञान धाराओं के बीच बराबरी आवश्यक है। आज के समय में इसका अर्थ हुआ कि स्कूल और विद्यालय की ज्ञान और विद्या के बराबर किसान, कारीगर, आदिवासी, कलाकार इत्यादि या बहुजन के ज्ञान और विद्या को मान्यता मिलना है।



- स्वराज की व्यवस्था में प्रतिस्पर्धा नहीं सहयोग की भावना होती है। प्रतिस्पर्धा से समाज में नफरत फैलती है, जबकि सहयोग से सद्भाव।
- कबीर दास की वाणी 'तू कहता कागज की लेखी, मैं कहता आंखन की देखी' यह बात चरितार्थ केवल स्वराज की व्यवस्थाओं में ही संभव है। कागज को जितना महत्व दिया जाता है, उससे ज्यादा समाज की समस्याओं, आवश्यकताओं, भावनाओं और आपसी संवाद के बल पर समाधान खोजे जाएँ तो न केवल समाधान शीघ्र होंगे बल्कि भाईचारे और सहजीवन के धागे मज़बूत होंगे। यह बात नहीं भूलना चाहिए कि मनुष्य के अस्तित्व के आगे कागज का अस्तित्व कुछ भी नहीं।
- स्वराज की व्यवस्था में रोजगार, शिक्षा, चिकित्सा, इत्यादि अनेक सुविधाओं से किसी को भी वंचित नहीं किया जा सकता। सभी की आमदनी में समानता भी आवश्यक है। संपत्ति है तो उसका लाभ सभी लेंगे और विपत्ति है तो थोड़ा-थोड़ा कष्ट सभी सहेंगे। कुछ लोग लगातार हाड़-तोड़ मेहनत करते रहें, कर्ज और परेशानी में पड़े रहें, और कुछ लोग मौज-मस्ती, ऐशो-आराम की जिंदगी जीते रहें, स्वराज की व्यवस्था में यह संभव नहीं।



## भाग तीन : समाज सृजन के कला मार्ग

## ओ कलाकार ! सुनते हो?

-संजीव दाजी

एक फकीर :

अरे ओऽऽऽ कलाकार, सुनते हो ?

कलाकार! तुम हो दार्शनिक!

मानवीय चेतना को ज़िंदा रखने वाले,

पाखंड को उजागर करने वाले,

मूल्यों का सतत नवीनीकरण करते,

सत्य का निर्माण करने वाले, कलाकार !

कुछ सुन रहे हो?

क्या आज भी लोगों के नज़दीक हो तुम ?

हवा का झोंका पत्तों को उड़ा ले गया,

ज्ञान-क्षेत्र में आया बवंडर तुम्हें भी उड़ा ले गया?

जब विश्वविद्यालय में पक्ष-विपक्ष एक ही दिखाई दे रहे

लोकदृष्टि का नजरिया तुम्हें ढूँढ़ रहा।

कलाकार! तुम तो दार्शनिक हो ?

क्या लोगों के नज़दीक हो तुम ?

कलाकार ! कहाँ हो तुम ?

कही अहम् को बढ़ाने के मार्ग तो नहीं गढ़ रहे ?

सृजन छोड़ सृजनकर्ता के नाम के पीछे तो नहीं ?

नहीं! नहीं ! यकीन नहीं होता है,

ये नहीं हो सकता।

दर्शक और श्रोता को ज्ञानी मानते

उनकी प्रतिक्रिया को गंभीरता से लेने वाले,

सदैव ही ज्ञान मार्गी रहे तुम !

ज्ञान को सामाजिक गुण मानने वाले,

उत्सर्ग की स्थिति को प्राप्त कर

लोगों को मुक्ति का मार्ग दिखाने वाले,

कलाकार ! तुम कहाँ हो ?

कलाकार :

अरे... नहीं! नहीं !

ओऽऽऽ फ़कीर, तुम सच कहते हो

इस बवंडर में,

किंकर्तव्यविमूढ़ , हतप्रभ से हो

हम भी गुड़के , गुलाटी खाये

लेकिन, अपनी गाँठ के ज्ञान को टटोलते

तुम्हारी हांक पर नींद से जागते

हम आ रहे हैं .....

लोगों के पास ....

सुनो, अरे, किसानों , कारीगरों,

ओ आदिवासियों और छोटे दुकानदारों ,

और सबके परिवारों की ज्ञानी महिलाओं

आप ही है लोकविद्या के मालिक

और लोकहित के पारखी,

हमारी चित्रकला, नाट्य, अभिनय,

गीत, संगीत और लेखन को

बेहिचक लोकहित और न्याय

की तराजू में तौलिये।

सही है कि ज्ञान-क्षेत्र में भूचाल आया है

लेकिन क्या अबकी बार भी

तुम्हारे ज्ञान-संसार को समझने में

हम कलाकार चूक कर रहे हैं ?

फैसला आप के हाथ में ,

हम, आपकी ज्ञान-पंचायत में ज़रूर आयेंगे।



## स्वराज चेतना का एक स्रोत कला और कलाकर्म में है

-चित्रा सहस्रबुद्धे

लोकविद्या दृष्टिकोण से कला ज्ञान का वह रूप है, जो समाज में बसता है, यानि जिससे समाज का हर मनुष्य (स्त्री और पुरुष) सिंचित और पोषित होता है। यह ज्ञान सामान्य-जीवन की भूमि पर फलता-फूलता है और सही-गलत, न्याय-अन्याय, नैतिक-अनैतिक आदि की पहचान के लिए किन्हीं जटिल अथवा परकीय अवधारणाओं एवं व्यवस्थाओं पर निर्भरता को नकारता है। यह स्वराज चेतना का एक अनिवार्य अंग है।

कला का समाज सृजन अथवा संगठन से गहरा रिश्ता है। यूँ कहे कि सृजन का हर कार्य कलाकर्म माना गया है। भारत में कला विचारकों के अनुसार संगीत, काव्य, चित्रकला, मूर्तिकला, नाट्य आदि तो कलायें ही हैं; लेकिन माताएं जो बच्चों को जन्म देती हैं और उनका पालन पोषण करती हैं, कलाकार हैं। उसी तरह समाज का नेतृत्व करने वाले भी कलाकार ही हैं क्योंकि वे समाज को संगठित करने के सृजन के नए पथ बनाते हैं (कला दार्शनिक निहार रंजन राय)। यहीं नहीं बल्कि किसान, कारीगर, आदिवासी, महिलायें आदि सब सृजनकर्ता, यानि कलाकार होते हैं। समाज के सृजन में लगे ये सभी समाज कलाकार माने गए हैं। तो, कला में ज्ञान का क्या प्रकार है जो सामान्य जन को सृजनकर्ता (ज्ञानी) का दर्जा देता है?

कला में 'ज्ञान' का प्रकार क्या है इसका एक महत्वपूर्ण उल्लेख पौराणिक काल के काशी नरेश राजा प्रतर्दन (राजा दिवोदास के पुत्र) के कथन में है, जिसकी आज तक कलादर्शन में मान्यता है। इसके अनुसार 'विषय' जब तक 'विषयी' के बाहर है, तब तक ज्ञान असंभव है और कला (सृजन) में विषय और विषयी के बीच द्वैतभाव का अभाव ही आदर्श है। समाज सृजन अथवा समाज पुनर्निर्माण का आदर्श भी यही हो सकता है, जिसमें राजा और प्रजा का भेद खत्म हो जाये, यानि स्वशासन

अथवा स्वराज की ओर समाज गतिशील हो. हिंदी के मूर्धन्य कवी मैथलीशरण गुप्त ने ‘पंचवटी’ खंड काव्य में लक्ष्मण के मुख से इसी विचार को उजागर किया है—

“और आर्य(राम) को, राज-भार तो, वे प्रजार्थ ही धरेंगे,  
व्यस्त रहेंगे, हम सबको भी, मानो विवश बिसारेंगे!  
कर विचार लोकोपकार का, हमें न होगा इसका शोक;  
पर अपना हित आप नहीं क्या कर सकता यह नर लोक?”

तो, समाज सृजन के कला मार्ग हमें ‘राजनीति’ और ‘केन्द्रीय सत्ता’ की अवधारणाओं से बाहर निकाल कर नये किस्म के समाज संगठन के विविध रूप उजागर करते हैं, जिनमें समाज में सत्ता के वितरण के अनेक प्रकार दिखाई दे सकते हैं और जो साथ-साथ अस्तित्व रखते हैं. भारत भूमि पर ऐसे समाज संगठनों की अनेक परम्पराओं के उदाहरण मिलते हैं.

कला और कलाकर्म में निहित कुछ महत्वपूर्ण अवधारणाओं की चर्चा हम यहाँ करेंगे, जिनके मार्फत हम उन संभावनाओं को टटोल सकें जो स्वराज चेतना की बुनियाद बनती दिखाई देती हैं.

#### **कला, सृजन और नैतिकता :**

कला मनुष्य की सृजन शक्ति का प्रमुख स्रोत है. ऐसा स्रोत जो समग्र प्रकृति में मनुष्य को उसके अस्तित्व, कर्तव्य और ज्ञान का बोध कराता है. कला जीवन को छंदमय (स्वानुशासित) और ज्ञानमय बनाती है. मनुष्य-मनुष्य के बीच और प्रकृति के साथ न्यायपूर्ण संबंधों को बुनने का आधार कला में होता है. कला में भाव और रस की उत्पत्ति का अर्थ है, दूसरों के प्रति संवेद और संवेद्य होने की दिशा में बढ़ना. यह नैतिक क्रिया है. कलाकर्म एक ऐसी नैतिक क्रिया का अंग है, जिसमें सौन्दर्य और नैतिक एक हो जाते हैं. निसंदेह देश और काल अनुसार कला समाज की व्यवस्थाओं में न्यायपूर्ण सुधार की दिशा का बोध कराती है. इतना ही नहीं कला में यथार्थ को

भेदने की और अनदेखे अज्ञात से साक्षात्कार कराने की शक्ति होती है, जो मनुष्य की रचनात्मकता के लिए अनंत स्रोत है।

#### स्वायत्तता :

स्वराज में प्रत्येक व्यक्ति, परिवार, कुनबा, बस्ती, समाज, क्षेत्र की स्वायत्त सत्ता का विचार रहा है; भाषा, उत्पादन, प्राकृतिक संसाधनों के भंडार इत्यादि सब में एक स्वायत्त सत्ता का विचार बसता है। यानि स्वराज एक ऐसे समाज-सृजन का विचार है, जिसमें हर पिंड और हर क्रिया की अपनी स्वायत्तता है। यूँ कहें कि समाज स्वायत्त सत्ताओं का जाल-सा है और प्रत्येक व्यक्ति की सक्रियता और सत्ता इस जाल के सहारे स्थापित होती है। समाजशास्त्र के मार्फत समाज की जो समझ बनती है, वह बहुत स्थिर और जड़ है और हमारे भारत के समाजों के लिए ये लागू नहीं हो पाती है।

यहाँ समाज एक जैव क्रिया की तरह बनते, नवीन होते और खत्म होते देखे गए हैं। ठीक वैसे ही जैसे लोकविद्या पैदा होती है, नवीन होती है और फिर लुप्त भी हो जाती है, या अनेक धाराओं में मिलकर नई धाराओं को जन्म दे देती है। समाजों की रचना भी इसी तरह होती है। हर समाज अपने से लघु लेकिन स्वायत्त समाजों से बना है और ये लघु समाज भी अनेक लघुतर लेकिन स्वायत्त समाजों से बने माने गए हैं। इस तरह बृहत्तर समाज की स्वायत्तता का आधार स्वायत्त समाजों से बुने जाल में है। कला में कलाकार की स्वायत्तता को प्रधानता है। समाज में बसी कला वास्तव में लोकविद्या ही है और स्वायत्त समाजों का ज्ञानगत आधार लोकविद्या में ही हो सकता है।

#### न्याय, त्याग (समर्पण) और भाईचारा (लय और छंद )

स्वायत्त समाजों के निर्माण के आधारगत मूल्य न्याय, त्याग और भाईचारा में है। कला विचारकों के अनुसार संगीत, नाटक, सिनेमा और वास्तुकला ऐसे कलाकर्म हैं, जिनमें कला की अनेक विधाएं, प्रकार, शैली, और साधन आदि एक साथ आकर

अपनी विशिष्टता और स्वायत्त सत्ता को एकदूसरे में इस तरह समर्पित करती हैं कि अंतिम कृति में हर एक की सत्ता का एहसास/अस्तित्व बना रहता है और एक विलक्षण कृति का सृजन होता है; एक ऐसी कृति जिसका सृजन पूर्व कोई भौतिक रूप नहीं होता और यही अंतिम कृति उन सारे लोगों और उनके भाव-संसार को भी शामिल कर लेती है, जो इस कला सृजन में प्रत्यक्ष भागीदार नहीं रहे होते। यह कला का चरम है। संवेदना, स्वायत्तता, सहजीवन, भाईचारा जैसे मूल्यों को समाहित किये बिना ऐसी रचना संभव नहीं हो पाती। समाज के सृजन और उत्सर्ग का भी यही प्रकार है, जो स्थान और काल की सीमाओं में नहीं बंधता। समाज के सृजन और सञ्चालन में कला के इन बुनियादी तत्वों को समाहित करने के मार्ग मजबूती से सामने लाये जाने चाहिए। स्वायत्तता के साथ सहयोग और सहजीवन के विचार का मजबूत प्रमाण कला में ही मिलता है।

भोजन, वस्त्र और आवास ये सब रचना के वे क्षेत्र हैं, जिनमें अनेक प्रकार, शैली, विधा, और साधन से युक्त विविध ज्ञान-धाराएँ एक साथ उपस्थित होती हैं और अपनी विशिष्टता और स्वायत्तता का पूर्ण एहसास दिलाते हुए अंतिम रचना (समाज संगठन) को समर्पित होती हैं। 'स्वराज' को साकार करने की कल्पना के पीछे भी यही प्रेरणा शक्ति है। विविध समाजों के बीच संवेदना, स्वायत्तता, सहजीवन, भाईचारा जैसे मूल्यों के आधार बनें तो आज के बेसुरे समाज को निश्चित ही सुरीला बनाया जा सकता है। यही आज का स्वराज होगा।





## "क्या लिखूं ?"

- नूर फ़ात्मा

वर्ष 2020-22 की कोविड महामारी के दौरान लाकडाउन में शहरों और महानगरों से लाखों मजदूर, पटरी-ठेले वाले और छोटी-छोटी दुकानों से जीवनयापन करने वाले लोग और उनके परिवार बेघर और बेरोजगार हो गए और उन्हें वापस अपने गांवों की ओर लौटना पड़ा. इस दर्दनाक घटना पर लिखी गई कविता.

क्या लिखूं ?  
बस ये सोचती हूँ उनकी बातें,  
जो कभी अपनी दुनिया में,  
मस्त मगन थे.  
थोड़ी ही सही भूख अपनी  
मिटा पाते थे,  
मोटी ही सही, वो रोटी खाते थे.

क्या लिखूं ?  
अब वो भुखे मर रहे हैं,  
पैदल चलने पर मजबूर,  
कहीं पटरियों पर कुचले जा रहे  
तो कहीं गाड़ियों से,  
कहीं राह पर, कहीं सडकों पर  
वो मर रहे हैं .

क्या लिखूं?  
उनका कसूर क्या है

वो तो बस मजदूर हैं, मजदूर  
इमारतें, फ़ैक्ट्रीयाँ, पुल, मस्जिद  
मन्दिर, गुरुद्वारे, और गिरजाघर  
और भी बहुत कुछ  
यही तो बनाते हैं .

क्या लिखूं ?  
ये मजदूर हैं  
भूखे भी रहते हैं,  
ताने भी सुनते हैं,  
और मरते हैं, बे मौत  
वो मजदूर है, मजदूर  
इनसान कहां हैं?  
वो तो मजदूर है!

क्या लिखूं ?  
उन्हें जीने का हक़ नहीं  
वो तपती धूप, पथरीली ज़मीन,

सब बर्दाश्त करते हैं	इसलिए कि वे मज़दूर हैं, मज़दूर!
वो इंसान कहा हैं?	
बरसते पानी, धमकती आँधी,	क्या लिखूं ?
कडकती बिजली,	इन हालात को देखकर नूर
सभी कुछ बर्दाश्त करते हैं.	तुम भी खामोश हो
सदियों से वो जुल्म सहते आये	क्या तुम्हारे अन्दर का भी
वो मज़दूर है, मज़दूर	इंसान मर गया ?
क्या लिखूं ?	कुछ करो, कुछ तो करो
दौर कोई भी हो निशाने पर वे ही	वरना ये हालात के हाथों
ज़माना बदला, सोच बदली, लोग बदले	सभी मारे जायेगे
पर नहीं बदलें हैं उनके हालत	क्या लिखूं?



## परजुनियाँ

-रामजी यादव

झिलमिट की शादी थी। बरच्छा भक्तवान कल एक साथ निपट गया था। आज बारात जानी थी। कल नाउन का जलवा था आज नाऊ को आफत थी। बैठक के एक कोने में शोभा दादा उस्तरा कैची लेकर बैठे हुए थे। घर और पड़ोस के लोगों समेत कुछेक मेहमानों ने भी दाढ़ी बनवाई, बाल कटवाए। लड़कों ने बंगला छंटवाया। दुलहा और सहबाला अपने बाल शिवपुर के किसी हेयर कटिंग सैलून से कटवा चुके थे क्योंकि शोभा के पास नई तकनीक नहीं थी। शोभा दादा इसलिए बैठे रहे कि जो भी बारात में जाएगा उसे चिक्कन बनाएँगे। एक तरह से दाढ़ी बनवाना बारात जाने की अर्हता थी और जो भी दाढ़ी बनवाता वह बारात में जरूर जाने वाला होता।

शायद शोभा दादा अलसा गए थे या उन्हें भूख लग आई थी। जो भी हो लेकिन उनके हावभाव से लग रहा था कि वे ठीहा छोड़ना चाहते थे। अभी वे अपने पैरों को हिलाने भी न पाए थे कि दल्लू आ गए। दल्लू गेंहड़ा चराते थे। उनकी धोती इस तरह बँधी होती थी कि एक पाँयचा घुटने के नीचे रहता और दूसरा जाँघ के ऊपर चढ़ जाता। अक्सर उनके लँगोट का पुछल्ला बीच से लटकता रहता था जिससे पता चलता था कि उन्होंने अंदर भी कुछ पहना हुआ है। अन्यथा उनकी 'पसेरी' का दोलन देखकर प्रायः यह भ्रम टूट जाता कि वे लंगोटधारी भी हैं। उनके सामने के दो दाँत गिर चुके थे। बाल बेतरतीब थे और दाढ़ी बढ़ी हुई थी। पैरों में मोटी-मोटी बिवाइयाँ फटी हुई थीं गोया पूरी एड़ी कुदाल से कुतरी गई हो। उन पर मैल चढ़ी हुई थी। लेकिन दल्लू जिस तत्परता से चलते थे उसे देखकर लगता था कि वे इसकी कतई परवाह नहीं करते थे।

दल्लू गरीब थे और गरीबी को भी अपने तरीके से मात देते थे। मसलन एक बार उनका पैर कुल्हाड़ी से कट गया। दूसरा कोई होता तो घबरा कर मर गया हो लेकिन दल्लू ने घाव पर इत्मीनान से पेशाब किया और घर आकर खौलता हुआ तेल डालकर सो गए।

उन्होंने शोभा के मन की हलचलें दूर से भाँप ली थी। इसलिए तुरंत पहुँचे और बोले- 'अरे का शोभा भिया। उठने के फेर में हो का!'

शोभा समझ गए कि इनको निपटाए बिना उठना संभव नहीं है फिर भी उठ गए तब बोले- 'हाँ हो। तनी पिसाब कर लूँ। भूख भी लग गई है। अब तो कोई बारात में भी नहीं जाने वाला है।'

दल्लू तनिक रोष से बोले- 'अरे के नहीं बरात में जाएगा।' शोभा ने कहा- 'अब तो कोई नहीं लौकता।'

'अरे तोहार भी मर्दवा आँख है कि आलू। अरे घर की बरात में हम न जाऊँगा तो और कौन जाएगा!'

'आँय ! तू जाओगे।'

'नहीं तब का खाली तुम्हीं जाओगे।'

शोभा ने समझ लिया कि अब बिना हजामत किए जान छूटने वाली नहीं है। इसलिए थोड़ी नरमी खाते हुए बोले- 'पता नहीं भवा! हमें तो नहीं बिस्सस है कि तू जाओगे।'

दल्लू ने ऊँची आवाज में कहा 'अरे बनाओगे नहीं तो का लँड़ऊ जाएँगे। चले हो पदाने !'

शोभा ने निस्पृहता और हिकारत के मिले-जुले स्वर में कहा- 'आओ... आओ! गाँव भर के जिन जनाओ कि बरात में जाना चाहते हो।'

दल्लू जाकर बैठ गए। ठीके पर बैठते हुए शोभा ने सोचा कि केवल दाढ़ी बनाना ही पर्याप्त होगा इसलिए दाढ़ी पर पानी लगाने लगे।

यह देखकर दल्लू बिगड़ गए- 'देखो शोभा लाँड़ मत चाटो। परजा हो तो परजा की तरह रहो। ई बार का सरग में मिलोगे तब बनाओगे।'

अंततः शोभा को हार माननी पड़ी। वे दल्लू का बाल काटने का उपक्रम करने लगे। बड़ी मेहनत से बाल छाँटा। दाढ़ी बनाई। मूँछें तराशी और जब सब हो गया तो दल्लू ने बगलें खोल दी।

खिसियाकर शोभा उस्तरा तेज करने लगे। फिर भी चुप न रहा गया। नाक सिंकोड़ कर बोले- 'अरे यार छोड़ो ई खुत्था के।'

लेकिन दल्लू यह मौका कब छोड़ने वाले थे।

जब सब ठीक हो गया तब कई देर तक दल्लू ने शोभा के धूमिल पड़ चुके आईने में अपने को देखा और मुस्कराए। इतना खिलकर मुस्कराए कि आगे के दाँत पूरे नजर आए। फिर बोले- 'हाँ अब ठीक है। सब झकाझका।'

शोभा ने भुनकर उन्हें देखा। अब तो हजामत कर ही चुके थे, इसलिए पहले पेशाब किया और हाथ मुँह धो आए। भीड़ तो कोई थी नहीं। इक्का-दुक्का लोगों की ही पंगत थी। शोभा भी एक ओर बैठ गए। उन्हें तो बारात में जाना ही था। 'वर का पानी' ले जाना था और दूल्हे को सँभालना था। कुल मिलाकर आज पचास-साठ की कमाई के आसार थे। यह कमाई तो तब भी होती जब कोई बाराती न होता। बारात के चक्कर में तो शोभा को बीस-पच्चीस लोगों की दाढ़ी और बाल बनाना पड़ा। नाहक मेहनत थी। लेकिन परजुनिया होने का यही तो दुख है- अंजही पर बेगार करना। बेमन से दिया गया पद स्वीकार करना। अक्सर लड़के वाला नाऊ होने पर वे सवा पाँच रुपये माँगते तो बड़ी मुश्किल से बीस आना मिलता। दस-बारह प्रकार के अनुष्ठानों में जहाँ सौ-सवा सौ की प्राप्ति जायज रहती वहाँ रो-धोकर बीस-पच्चीस रुपये ही मिल पाते। कभी कोई बंबई-कलकत्ते कमाने वाला लड़की वाला होता तो एकाध धोती-कुर्ता भी मिल जाता। कभी बढ़िया होता और कभी इतना खराब की अवर्णनीय होता। लड़की वाला नाई होने पर भी यही गति थी। नाऊन के लिए जो साड़ी मिलती उसे देखकर कभी-कभी शोभा और शोभा बो दोनों जन का खून खौल उठता लेकिन कहते हैं कि दान की बछिया के दाँत नहीं गिने जाते, इसलिए कुछ कहना तो नहीं चाहिए लेकिन शोभा बो पीढ़ियों की 'प्रजा के अधिकार' के नाते लड़ पड़तीं और कभी-कभी अच्छी साड़ी प्राप्त कर लेतीं। कभी-कभी तो कहा-सुनी के बाद भी हाथ मलना पड़ता था।

जहाँ लोग अपनी नियतियों से पहले ही परिचित रहते हैं वहाँ बिना मतलब की मेहनत से बचे रहना ही बुद्धिमानी और उपलब्धि होती है। शोभा अपनी कमाई के बारे में आश्वस्त थे। इसलिए बिना मतलब लोगों की दाढ़ी छीलते रहना और बालों में कैची मारते रहना बेकार था। इसलिए जब भी कोई उनके सामने आकर बैठता तो उससे दो-तीन बार जरूर दरियाफ्त करते कि बारात में जाना है कि नहीं जाना है। घर में कोई ऐसा जरूरी काम तो नहीं पड़ा है जो बारात में जाने से भी ज्यादा जरूरी हो। अगर है तो बारात में जाने से नुकसान छोड़ नफा नहीं होने वाला है। कहा भी गया है

कि बरें काटे तो बेस है लेकिन बारात में जाना नहीं। इस चक्कर में शोभा एक दो झिड़कियाँ भी खा चुके थे।

दिन उदासी और कोफ्त भरा हुआ था। दुपहरिया लंबी हो चुकी थी। फिर से अपने ठीहे पर बैठे शोभा इन्हीं बातों को दहा रहे थे। बीस-पच्चीस मिनट बाद जब वे ठीहे से उठकर नीम की छाँव में बैठे थे तब देखा कि दल्लू गायें लेकर चरवाहीं पर जा रहे थे। शोभा ने ध्यान से देखा। दल्लू ही थे। शोभा की मुट्ठियाँ भींच गईं वे किचकिचा कर बोले- 'तोहरी बाप की बिटिया की फलानचीन में। बरात में जा रहे थे सरऊ। कहे होते तो झाँट भी छील देता भडुअऊचोद की। सार हमरे ! तोहरी किस्मत में बस दऊ की बरात लिखी है।'

इतने पर भी उनका मन न भरा। उन्होंने मँगरू को बुलाया और बोले- 'देख लो भिया। बरात में जा रहे हैं। घंटे भर से उप्पर मेहनत करवाए हैं।'

मँगरू ने देखा। वे जानते थे कि दल्लू बारात में नहीं जाने वाले हैं लेकिन दरवाजे पर उन्हें हजामत बनवाने से थोड़े ही रोक सकते थे। फिर कौन जेब से देना चाा। इसलिए मुस्कराते हुए बोले- 'समझो सोभा। नाऊ के नौ बुद्धि और नाउन के बत्तीस कही जाती है लेकिन अहिर के दिमाग की कोई थाह नहीं है।

न चाहते हुए भी शोभा मुस्करा पड़े।



अगोरा प्रकाशन की पुस्तक *आधा बाजा* से साभार

गाँव-गाँव में, घाट घाट पर,  
जंगल-बस्ती, हर पनघट पर,  
मेला-हाट और बाट-बाट पर,  
पग-पग पर हैं विविध ज्ञानधर ॥  
यहीं से अलख जगाना है,  
कौन है ज्ञानी ? ज्ञान कहां-कहां?  
फैसला यह करवाना है ॥

भाग चार : बहुजन ज्ञान विमर्श



## बहुजन ज्ञान विमर्श : विद्या आश्रम से शोध का प्रस्ताव

1995 से अब तक लोकविद्या के नाम से विचार और दर्शन पर जितने भी चिंतन, प्रकाशन और संगठनात्मक व रचनात्मक कार्य हुए हैं, वे एक नई विश्वदृष्टि का व्यापक फलक बनाते हैं. सृष्टि और समाज में न्याय, त्याग और भाईचारा पर गढ़ी हुई बुनियादी सत्ता का सत्य 'लोकविद्या' और 'सामान्य जीवन' के आपसी गतिशील संबंधों में बसा दिखाई देता है. इस सत्य के उजाले में समाज की परिवर्तनकारी शक्तियों की खोज, निर्माण, संवर्धन, नवीनीकरण आदि के प्रयास मनुष्य और मनुष्य समाज की गतिविधियों के उन विविध पक्षों से साक्षात्कार करा सकते हैं, जो एक नई और बेहतर दुनिया को बनाने के आधार होंगे.

इस ओर बढ़ने की दृष्टि से एक शोध का विचार पत्र प्रस्तुत है. अधिकांश विचारों की व्याख्या और सन्दर्भ देखें-

विद्या आश्रम वेबसाईट [www.vidyaashram.org](http://www.vidyaashram.org)

लोकविद्या जन आन्दोलन ब्लॉग

[www.lokavidyajanandolan.blogspot.com](http://www.lokavidyajanandolan.blogspot.com)

दर्शन अखाड़ा ब्लॉग [www.darshanakhadablog.wordpress.com](http://www.darshanakhadablog.wordpress.com)

### 1. शोध के बारे में दो शब्द

संक्षेप में कहें तो यह शोध बहुजन-समाज की उज्ज्वल परम्पराओं की खोज है, जो हमें एक नये समकालीन राजनैतिक चिंतन की ओर ले जाये. इसके कुछ प्रमुख बिंदु हैं, जो नीचे दिए जा रहे हैं.

- **सामान्य जीवन की परंपरा बहुजन-समाज की जीवन परंपरा है.**

यह स्थापित करने के लिए किसी तर्क की ज़रूरत नहीं है. यह लगभग पारिभाषिक है. बहुजन कहा ही उसे गया है जो सामान्य है, अभिजात्य नहीं. हांलाकि स्वतंत्र तौर पर यह बात कहने का आशय यह है कि सामान्य जीवन को एक जीवन परंपरा के रूप में समझा जाये. 'सामान्य जीवन' एक असैद्धांतिक सैद्धांतिक श्रेणी है. असैद्धांतिक इस अर्थ में कि इसकी कोई शर्त

नहीं है। किसी भी सिद्धांत, धर्म, तकनीकी, समाज व्यवस्था आदि में इसके रूप और सार की कोई शर्त नहीं होती तथापि वह इन सबसे प्रभावित होता है। यह जीवन की वह परंपरा है जिसमें जीवन के किसी भी पक्ष (राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, ज्ञान, दार्शनिक इत्यादि) में कोई ऊपर का अथवा सत्तायुक्त आयाम बनने की न कोई प्रक्रिया होती है और न कोई चेष्टा। सहयोग की इसमें बड़ी और केन्द्रीय भूमिका होती है, प्रतिस्पर्धा की नहीं।

सामान्य जीवन की परंपरा को बहुजन की परंपरा कहने से जो सामान्य है वह राजनीतिक हो उठता है। इसकी कुछ समानता महिला आन्दोलन के 'पर्सनल इस पोलिटिकल' के नारे के साथ देखी जा सकती है। इस स्थापना से भी की जा सकती है कि यह देश अपने गांवों और बस्तियों में बसता है। सामान्य जीवन के राजनीतिक होने का अर्थ है उस समाज की कल्पना, जिसमें अभिजात्य हो ही नहीं।

- लोकविद्या की परम्परा बहुजन-समाज की ज्ञान परम्परा है।
- स्वराज की परंपरा बहुजन-समाज की राज परंपरा है।
- संत परम्परा बहुजन-समाज की परंपरा है।
- स्वदेशी दर्शन बहुजन-समाज का दर्शन है।
- पंचायत की परंपरा बहुजन समाज द्वारा समाज के संगठन, संयोजन एवं नियमन (कानून एवं व्यवस्था) की परंपरा है। इसे इस देश के विधि-विधान की मौलिक परंपरा के रूप में देखा जा सकता है।
- समाज के वित्तीय संगठन, उत्पादन और लेन-देन की परम्पराएँ बहुजन-समाज में प्रचलित वितरित व्यवस्थाओं के विचारों के अनुकूल रही हैं।
- इन सभी बिंदुओं को आपस में गूँथना ही यह शोध है। कहा जा सकता है कि इस गूँथने का सक्रिय गतिशील रूप एक बहुजन ज्ञान संवाद है।

ये इस शोध की पूर्व मान्यताएं (हाइपोथिसिस ) हैं. शोध की बनावट और उसका विस्तार इस दृष्टि से किया जाएगा कि इन मान्यताओं अथवा इस समझ के विभिन्न बिन्दुओं पर प्रकाश पड़े. वे कितने सही हैं और कितने गलत, तथा उनका सार व स्वरूप क्या है, यह कई कोणों से सामने आए.

‘सामान्य जीवन’ और ‘लोकविद्या’ के गतिशील संबंधों पर एक व्यापक दृष्टि बनाने के रास्ते में कई चुनौतियाँ सामने खड़ी मिलती हैं. इन चुनौतियों को पहचानने और उनसे मुकाबला करने की दिशा और तरीकों पर एक सरसरी निगाह निम्नलिखित बिन्दुओं के मार्फत रखी गई है.

## 2. ‘राजनीतिक विचार और राजनीति’ के बंधन

- ‘सामान्य जीवन’ के उल्लंघन के विरुद्ध संघर्ष को बुनियादी अर्थों में राजनीतिक कहा जा सकता है।
- समकालीन विश्व में राज्य, साइंस और पूंजी सामान्य जीवन के उल्लंघन के प्रमुख स्रोत हैं। इसलिए, साइंस के विरुद्ध, पूंजी के विरुद्ध और राज्य के विरुद्ध संघर्ष बुनियादी तौर पर राजनीति को परिभाषित करते हैं. आम बोलचाल की भाषा में इन्हें परिवर्तनकारी राजनीतिक गतिविधि कहा जा सकता है।
- लेकिन इससे एक अजीब स्थिति पैदा हो जाती है. इस प्रकार वह गतिविधि राजनीतिक गतिविधि कहलाती है जिसका उद्देश्य ‘राजनीतिक समाज’ को उखाड़ फेंकना है। राजनीतिक समाज वह है, जो साइंस, पूंजी और राज्य के उद्भव के साथ बना है। अब तक लगभग सभी भाषाएँ, कम से कम सार्वजनिक क्षेत्र की भाषा, मुख्यतः इस राजनीतिक समाज की भाषा हैं। इसलिए सही ढंग से कहें तो मुक्ति के बुनियादी संघर्ष ‘राजनीतिक संघर्ष’ नहीं हैं और फिर भी आम बोलचाल में उन्हें ‘राजनीतिक संघर्ष’ कहा जाता है.
- एक बुनियादी ज्ञान आंदोलन के संदर्भ में यह शब्दावली या भाषाई समस्या हल करने के उपाय मिलते हैं. इसलिए, यदि कोई बुनियादी, परिवर्तनकारी अर्थ में राजनीति करना या उसके बारे में बोलना चाहता है तो उसे अपनी गतिविधि और संवाद को ‘ज्ञान आंदोलन’ में अवस्थित करना होगा. इनमें से कुछ बातें बहुत स्पष्ट हो जाती हैं जब हम गांधी के समय में इन बातों को

घटित होते देखते हैं. हम गांधी को एक नए ज्ञान आंदोलन और एक नए राजनीतिक आंदोलन दोनों के निर्माता के रूप में देख सकते हैं और दोनों को उचित रूप से बुनियादी परिवर्तनकारी आंदोलन कहा जा सकता है.

- तब हम देखेंगे कि एक बुनियादी राजनीतिक आंदोलन लोगों के ज्ञान आंदोलन से अलग नहीं हो सकता।
- अगर हम इस देश को 'इंडिया' और 'भारत' के रूप में विभाजित देखें तो आजादी के बाद की सारी राजनीति इण्डिया की राजनीति दिखाई देगी. यदि साइंस, राज्य और पूंजी को एक-दूसरे के साथ गुंथे हुए देखेंगे तो आप इण्डिया को देखेंगे. 'सामान्य जीवन' को उसकी पूरी प्रतिष्ठा बहाल करने की आवश्यकता का दावा जब लोगों के ज्ञान आंदोलन (लोकविद्या आंदोलन) के साथ आएगा तब भारत के लायक राजनीति बनेगी.
- यह देश 'भारत' और 'इंडिया' के रूप में विभाजित है तथापि यह एक गतिशील परिस्थिति है और दोनों को एक दूसरे में भी देखा जा सकता है। कोई भी आसानी से भारत में जीवन और आकांक्षाओं के विभिन्न पहलुओं को इंगित कर सकता है, जो इण्डिया में जीवन और आकांक्षाओं के समान हैं. इसी तरह इण्डिया में जीवन के उन विभिन्न पहलुओं को देखा जा सकता है जो भारत में प्रचलित हैं. 'सामान्य जीवन' का विचार विभाजन को पाटना है, नया विभाजन पैदा करना नहीं. सामान्य जीवन केवल सामान्य पुरुषों और महिलाओं का जीवन नहीं है, यह सर्वव्यापी है। संत-परंपरा नित नवीन परिस्थितियों (उल्लंघन, हाशियेकरण, दमन आदि) में विचार और व्यवहार में सामान्य जीवन के नव-निर्माण और पुनर्सृजन की परंपरा है.
- दर्शन परम्पराएँ जिनमें सत्य, स्वायत्तता और सहजीवन (भाईचारा) के विचार प्रमुख भूमिका में होते हैं, वे ही 'राजनीतिक-समाज' के विकल्प में 'वितरित सत्ता' अथवा 'स्वायत्त इकाइयों के सहजीवन' पर आधारित समाजों के संगठन और सञ्चालन का विचार ला सकते हैं. यह स्वराज का विचार है.

### 3. सामाजिक विचार

- राजनीतिक दृष्टि से देश का सामान्य जन-समाज एक दो राहे पर खड़ा है. या तो वह समाज में बड़े संरचनागत परिवर्तन की ओर आगे बढ़ने का रास्ता चुने या फिर वर्तमान व्यवस्था में अपने लिए अधिक से अधिक जगह प्राप्त करने के रास्ते बनाये. ये दोनों बातें अलग तो हैं किन्तु एक दूसरे से जुड़ी हुई भी हैं तथा समाज से सरोकार रखने वालों के बीच लम्बे समय से बहस का विषय रही हैं और रहेंगी.
- देश के सामान्य जन-समाज यानि बहुजन-समाज की सार्वजनिक उपस्थिति, राजनीतिक भूमिका और एक समाज के रूप में गोलबंदी आज एक नए मोड़ पर है. जन गणना में जाति की पहचान लिखी जाने के अभियान के रूप में यह दिखाई दे रहा है. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में सभ्यता, संस्कृति और नस्ल के मुद्दे बहस में आ चुके हैं. इसलिए अब बराबर के सम्मान और आय के पक्ष में परिवर्तन की राजनीति की दिशा का पुनर्निर्माण आवश्यक है. जाति का विमर्श बहुजन-समाज का विमर्श ही है. अपने समाज पर फिर से एक नज़र डालने की ज़रूरत है.
- बहुजन-समाज सामान्य लोगों का समाज होता है (विशिष्ट जनों का नहीं). इसे अलग-अलग ढंग से जातियों के मार्फत, समाज के रूप में, बिरादरियों के मार्फत, मुख्यधारा से बहिष्कृत लोगों के रूप में, अंग्रेजी राज के पहले से अस्तित्व रखने वाली सामाजिक संरचनाओं के रूप में अथवा सामाजिक और शैक्षणिक तौर पर पिछड़ों के रूप में पहचाना जाता है. कौन सी पहचान को प्राथमिकता दी जाए अथवा पहचान का वरीयता क्रम क्या हो यह इससे तय होता है कि आप के उद्देश्य क्या हैं, और यह कि समाज निर्माण, परिवर्तन और प्रगति के आप के विचार क्या हैं?
- यह देश और यहाँ का धर्म बहुजन-समाज का है. संत परम्परा बहुजन समाज के विचारों की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है. इसने धर्म को लोक-भागीदारी के मार्फत लोकधर्म के रूप में खड़ा किया. अब हिंदुत्व के नाम से एक नया धर्म इन पर थोपा जा रहा है. इतिहास के अधिकांश काल में बहुजन समाजों के ही राजा

रहे. ध्यान रहे कि उनके राज में सामान्य जीवन और स्वायत्तता का सम्मान रहा. यह जरूर हुआ कि अलग-अलग समयों पर ब्राह्मणों, मुगलों और अंग्रेजों ने इन पर राज करने की व्यवस्थाएं बनाईं. इसका अर्थ यही है कि बहुजन-समाज के पास जीवन संगठन, राज और समाज-सञ्चालन का दर्शन रहा है, जिसके बल पर सभ्यता और संस्कृति के कीर्तिमान गढ़े गये हैं.

- बहुजन-समाज अपना रास्ता अपने दृष्टिकोण, दर्शन और हितों के जरिये चुने इसके लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि बड़े पैमाने पर इस विषय पर सार्वजनिक बहस हो. यह बहस आज के प्रभु वर्गों के विचारों से स्वतंत्र होना जरूरी है और इसलिए बहुजन-समाज के दर्शन, इतिहास, राजनीति, और संभावी भविष्य को लेकर विस्तृत शोध व अनुसंधान की जरूरत है. यह अनुसंधान विश्वविद्यालय के अनुसंधान से सर्वथा अलग होगा क्योंकि विश्वविद्यालय के अनुसंधान पर पश्चिम की आधुनिक दार्शनिक परम्पराओं और ब्राह्मणों के विचारों का आधिपत्य है और उसमें बहुजन-समाज के दर्शन और उनके दर्द के लिए कोई स्थान नहीं है.
- बहुजन-समाज यह अनेक स्वायत्त लघु समाजों से बना समाज रहा है. समाज संगठन के ये विविध प्रकार लोकविद्या और सामान्य जीवन में गतिशील संबंधों के चलते नितनवीन और विविध आकार लेते रहे हैं. इनके निर्माण, गति और स्थायित्व की प्रक्रिया वितरित सत्ता के जल से सींची जाती रही हैं. एक तरह से लोकविद्या, सामान्य जीवन, समाज और स्वराज ये परस्पर नवीन और पुनर्निर्मित होते रहते हैं.
- लोकविद्या परम्परा बहुजन समाज की ज्ञान परम्परा है. आज की दुनिया में इस ज्ञान परम्परा का सामाजिक हस्तक्षेप स्वदेशी दर्शन और स्वराज के बीच की कड़ी बनाता है.

#### 4. ज्ञान, उत्पादन, तकनीकी, व्यवस्था और प्रबंधन

- मनुष्य के ज्ञान और उसकी रचनात्मक ऊर्जा का प्रेरणास्रोत कहाँ होता है, इस बारे में कई तरह के विचार होते हैं. एक दृष्टिकोण में इसे मनुष्य की आवश्यकताओं में देखा जाता है, किसी ने शासन की जरूरतों में, तो किसी

ने विकास की आवश्यकताओं में देखा, कोई खुशहाली के व्यापक उद्देश्यों के मार्फत देखता है, तो कोई नैतिक मूल्यों में उसकी जड़ें मानता है।

- उत्पादन, वितरण, प्रबंधन, संचार-संपर्क और व्यवस्था का ज्ञान, समाज संगठन और सञ्चालन के मौलिक सिद्धांतों को आकार देता है। बहुजन समाज में यह ज्ञान कुछ क्षेत्रों में प्रखर रूप में देखा जा सकता है। विशेषकर महिलाओं और छोटी पूँजी पर जीवनयापन करने वाले समाजों में यह अधिक स्पष्ट है। इनमें, न्याय, स्वायत्तता, मर्यादा, प्रेम, भाईचारा, त्याग और सहजीवन के व्यवहारिक रूप सामने आते हैं।
- बहुजन-समाज द्वारा सिद्धांत, व्यवहार और आवश्यकता आदि को 'सामान्य जीवन' और 'लोकविद्या' की कसौटी पर आंकने का अर्थ क्या है? समाज में किसी भी नए कदम और रचना के निर्णय और निर्माण के लिए, उसके लिए लगने वाले संसाधन, ज्ञान, तकनीकी, प्रक्रिया, उपभोग, पैमाना, स्वास्थ्य पर प्रभाव, अन्य जीवों और पदार्थों पर आने वाले परिणाम, आवश्यक संस्थाओं का निर्माण और संचालन आदि प्रत्येक पक्ष को विस्तार और गहराई से देखा जाता है।

## 5. दर्शन, दार्शनिक संवाद और ज्ञान आन्दोलन

- ऐसा कहा जाता है कि आज तकनीकी और विशेषज्ञता का दौर है। ऐसा कहने वाले व्यापक मानव हित तथा दर्शन इत्यादि पर चर्चा को गैरजरूरी समझते हैं। तथापि वास्तविकता यह है कि सभी कार्यों में कोई न कोई दर्शन निहित होता है और मानव जीवन पर होने वाले दूरगामी नतीजे भी निहित होते हैं। व्यापक बहस और दर्शन से किनारा कसना आत्मघाती है। प्रकृति का विनाश और मनुष्य और मनुष्य के बीच भयानक अंतर ये सब ऐसे ही नतीजे हैं। दूसरे महायुद्ध के बाद, यानि 20 वीं सदी के उत्तरार्ध में, दुनिया की पुनर्रचना में दर्शन को उचित स्थान नहीं दिया गया, न पश्चिम के देशों में और न नवोदित राष्ट्रों में। यह एक बड़ा कारण है कि आज दुनिया गरीबी, गैर-बराबरी, भयानक युद्धों और जलवायु संकट से घिरी हुई है।

- 20 वीं सदी के पूर्वार्ध में साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद से संघर्ष के दौरान वैश्विक दक्षिण के अनेक देशों में दर्शन पर व्यापक चर्चाएं हुई हैं। इनमें से बहुत सी अपनी स्वदेशी परम्पराओं की समकालीन पुनर्रचना के रूप में सामने आईं। 1939 से 1945 के बीच यूरोप से शुरू हुए महायुद्ध के बाद तमाम उपनिवेश स्वतंत्र हुए तथा साम्राज्यवाद को पीछे हटना पड़ा और अनेक देशों में आज़ाद सरकारें बनीं। किन्तु इन देशों में पश्चिम के देशों जैसी राज्य प्रणाली, उन्हीं के जैसा औद्योगीकरण तथा विश्वविद्यालयों में पश्चिमी सोच के दबदबे के चलते स्वदेशी दार्शनिक परम्पराओं का स्थान समाज में गौण हो गया। इससे समाज की प्रमुख धारा और सामान्य लोगों के बीच का दार्शनिक संवाद टूटता चला गया। यह एक भीषण परिस्थिति है, जिसमें समाज के उत्थान और पुनर्रचना के लोकप्रिय मूल्यों का निर्माण रुक जाता है और समाज एक अवनत अवस्था में किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। ऐसा नहीं है कि इस दौर में हुई वार्ताओं का स्वदेशी के विचार के साथ कुछ लेना-देना नहीं है। जन आंदोलनों के अंतर्गत तथा लोकहित के मुद्दों पर संघर्षों के सन्दर्भ में बुनियादी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक चर्चाएं हुईं, किन्तु ये चर्चाएं स्वदेशी दार्शनिक परम्पराओं से न जुड़ सकीं।
- 20 वीं सदी के अंत में वैश्विक स्तर पर बड़े आर्थिक, राजनैतिक और तकनीकी (इन्टरनेट) परिवर्तनों के साथ एक नए युग की शुरुआत हुई है जिसे हम संवाद का युग कह सकते हैं। इस दौर में जहाँ एक तरफ पश्चिम में उपजी और दुनियाभर में फैली कई दर्शन धाराओं की प्रासंगिकता पर सवाल खड़े होने लगे, वहीं दर्शन की स्वदेशी धाराओं से प्रेरणा लेने के मौके पैदा हुए हैं, हालाँकि सामान्य लोगों के साथ दार्शनिक संवाद टूटने का संकट बहुत बड़ा है। इसके चलते विचारों के पुनर्निर्माण और दर्शन के पुनरोदय के स्रोत सूखे नज़र आते हैं। ऐसे समय में दर्शन पर खुल कर बहस की आवश्यकता होती है। यह आवश्यक होता है कि दर्शन पर संवाद एक शक्ति के रूप में उभरे।
- दर्शन आध्यात्मिक और व्यावहारिक दोनों एक साथ होता है। वह वैयक्तिक और सामाजिक दोनों एक साथ होता है। विचार दार्शनिक तभी होता है जब वह सीमाओं में नहीं बंधता। दर्शन को किसी शैक्षणिक योग्यता, विशेषज्ञता



अथवा समाज में विशेष स्थान की आवश्यकता नहीं होती. यह निर्मल और सहज बुद्धि से दुनिया को देखने का प्रयास है. दर्शन की इस समझ के साथ यह देखना है कि दुनिया को बेहतर बनाने के लिए आज मनुष्य और समाज की शक्ति के स्रोत क्या हैं और कहाँ हैं ?

- सहज बुद्धि और शक्ति के स्रोत दोनों उतने ही परिवर्तनशील होते हैं जितना परिवर्तनशील सामान्य समाज व जीवन होता है. इसलिए यहाँ दर्शन के वे रूप सामने आते हैं, जिन्हें किन्हीं पूर्व मान्यताओं के अंतर्गत समझना अथवा स्थापित करना एक असहज कार्य होगा.
- बहुजन समाज की दर्शन परम्परा संत परंपरा में अपनी सुन्दर अभिव्यक्ति पाती है. यह समाज के निर्माण और पुनर्निर्माण की वह परम्परा है जिसे सत्य के निर्माण और पुनर्निर्माण के रूप में भी देखा जा सकता है तथा इसमें वर्तमान अध्ययन के सन्दर्भ का एक महत्वपूर्ण पक्ष देखा जाना चाहिए.
- आधुनिक दुनिया में 'ज्ञान' और 'अस्तित्व' का अलगाव साइंस, पूंजी और राज्य के उद्भव के काल से होता है। इन्हें 'सामान्य जीवन' के उल्लंघन के मुख्य स्रोतों के रूप में देखने से उस ओर बढ़ने के रास्ते खुलते हैं जहाँ ज्ञान और अस्तित्व अलग नहीं होते। तब लोकविद्या और सामान्य जीवन अविभाज्य दिखाई देते हैं। एक के बिना दूसरे का संज्ञान संभव नहीं है। सामान्य जीवन वह स्थान है जहाँ लोकविद्या होती है और लोकविद्या वह है, जिसे सामान्य जीवन में ज्ञान कहा जाता है। यानी समाज में एक व्यापक आमूल बदलाव का आन्दोलन अर्थात् एक बुनियादी राजनीतिक आंदोलन लोगों के ज्ञान आंदोलन से अलग नहीं हो सकता। यही ज्ञान आन्दोलन स्वदेशी दर्शन और स्वराज के बीच की कड़ी है.

## 6. अनुसंधान की पद्धति

- इस अनुसंधान का घर किसानों और कारीगरों के बीच होगा, रोज़ की कमाई करने वाले ठेले-गुमटी-पटरी वालों तथा मजदूरों के बीच होगा, बड़े पैमाने पर स्त्रियों के विचारों, कार्यों, अनुभवों में होगा, एक शब्द में कहें तो उनके जीवन

में होगा. देश की मुख्यधारा से सबसे ज्यादा कटे हुए आदिवासी समाज के लोग हैं और इस अनुसन्धान में उनके जीवन और तौर-तरीकों का बड़ा स्थान होगा.

- संतों के अनुयायियों से बातचीत शोध का एक प्रमुख हिस्सा होगा. जैसे गोरखनाथ, गुरुनानक, कबीर साहब, संत रविदास, संत तुकाराम, बासवअन्ना और तमिल, मलयालम, तेलुगु, उरिया, बंगला, तथा विविध प्रदेशों के संत.
- यह अनुसंधान मोटे तौर पर बहुजन ज्ञान संवाद होगा, जिसकी एक मूल मान्यता यह होगी कि बहुजन समाज एक ज्ञानी समाज है तथा यह अनुसंधान उसके ज्ञान को नए समकालीन रूपों में प्रस्तुत करेगा.
- बहुजन-समाज के व्यावहारिक ज्ञान, वस्तुओं को बनाने के शिल्प और कला से तो सब परिचित हैं तथापि इन दक्षताओं की पृष्ठभूमि में इनका अपना दर्शन होता है. यह संवाद इस दर्शन को सार्वजनिक पटल पर प्रस्तुत करने के रास्ते बनाएगा.
- यह अध्ययन संवाद के रूप में किया जायेगा. तरह तरह के संवाद. एक-एक व्यक्ति से अलग-अलग बात करना, समूह में चर्चा करना, स्थानीय बाजारों और गांवों तथा बस्तियों को इस अध्ययन की दृष्टि से गहराई से देखना, रिसर्च करने वालों द्वारा एक दूसरे का स्थान लेते रहना व आपस में विस्तार से चर्चा करना आदि.
- सामान्य लोगों के साथ वार्ता का एक बड़ा हिस्सा इस बात का होगा कि प्रयास के साथ उन्हें लोकस्मृति, कुलस्मृति, ग्रामस्मृति आदि के संसार में ले जाया जाये और स्मृति के उन विश्वों में उत्खनन (excavation) के लिए प्रेरित किया जाये. यह एक महत्वपूर्ण प्रयोग होगा और यदि इसके जरिये सामान्य जीवन में संगठन, प्रबंधन, व्यवस्था और ज्ञान के प्रश्नों पर कुछ नया प्रकाश पड़ता दिखाई दे तो इसका विस्तार किया जायेगा. अध्ययन के दौरान इसकी जांच सतत चलती रहेगी. इस जांच का रूप भी प्रमुखतः लोगों से और आपस में वार्ता, गहराई से चिंतन और संत परंपरा से सन्दर्भों के मार्फत आकार लेगा.

- इन विषयों पर लिखित शब्द की खोज होगी. इसके प्रमुख रूप से निम्नलिखित स्रोत हैं.
  - संत वचन और कार्य
  - भाषाई साहित्य. उदाहरण के लिए हिंदी क्षेत्र में प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ रेणु, हजारीप्रसाद, चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी', शुकदेव सिंह आदि.
  - अंग्रेजों द्वारा किये गए लेखन, जो उनके लेखकों के हो सकते हैं अथवा शासन की (सर्वेक्षण) रिपोर्ट के रूप में हो सकते हैं.
  - सामाजिक पंचायतों/संगठनों की कार्यवाही की रिपोर्टें.
  - प्रमुख जन आन्दोलन और उनके विचार, प्रेरणा, मुद्दे और संगठन के प्रकार
  - भाषा, कला और दर्शन की दुनिया के विवरण.
- **सक्रिय कर्म** : इस शोध का एक हिस्सा सक्रिय कर्म का होगा. विशेष रूप से लोकविद्या आंदोलन , बौद्धिक सत्याग्रह और ज्ञान पंचायत तथा इस शोध कार्य के बीच जीवंत लेन-देन का सम्बन्ध होगा.

## 7. वित्त

कितने पैसे की ज़रूरत पड़ेगी और कहाँ से आयेंगे इसका अनुमान अभी नहीं है. विद्या आश्रम अपने अनुदान से एक बहुत छोटी-सी शुरुआत कर सकता है. इसलिये इस रीसर्च प्रोग्राम के लिए आवश्यक वित्त और उसके स्रोतों के बारे में अपने उन मित्रों से बात करनी है जो वित्त प्रबंधन करते रहे हैं.



## लोकविद्या डिबेट्स ग्रुप की ऑनलाइन बैठकें

-गिरीश सहस्रबुद्धे

### प्रस्तावना

विद्या आश्रम के सदस्यों का एक गुट (लोकविद्या डिबेट्स ग्रुप) नियमित रूप से पिछले लगभग साढ़े-चार वर्षों से (अप्रैल 2021 से) ऑनलाइन बैठकें कर रहा है। इस दौरान हर महीने औसत तीन से अधिक बैठकें हुई हैं। इस गतिविधि का उद्देश्य लोकविद्या दर्शन और ज्ञान आन्दोलन पर मौलिक दृष्टि से विचार करना, नए सवाल खड़े करना तथा संवाद के जरिये विचार आगे बढ़ाने का प्रयास करना है। बैठकों में खुली चर्चा होती है। किसी भी विषय पर अनेक कोणों से विचार आते हैं जो लोकविद्या, सामान्य जीवन और ज्ञान आन्दोलन के विचारों से विभिन्न प्रकारों से गुंथे होते हैं। यह सारी चर्चा विद्या आश्रम के कार्यक्रम निश्चित करने में भी मददगार साबित हुई है। इस समूह में ज्यादातर बात अंग्रेजी में होती है। कुछ लोग हिंदी कम समझते हैं।

तय उद्देश्य के लिए देश और दुनिया में घटती महत्वपूर्ण घटनाओं पर चर्चा और लोकविद्या समाज के दृष्टिकोण से उन्हें समझने का काम किया गया है। दिल्ली का किसान आन्दोलन, रूस-युक्रेन युद्ध, देश में बढ़ता केन्द्रीकरण और सांस्कृतिक तानाशाही की घटनाएं, वैश्विक स्तर पर सत्ता में भूराजनैतिक बदलाव, काठमान्डू में विश्व-सामाजिक मंच का अधिवेशन, ए आइ का अर्थ और संभावित प्रभाव, इत्यादि चर्चा का विषय रहे। फरवरी 2024 के काठमांडू के अधिवेशन के लिए 'पक्की आय' की माँग को लेकर बुलेटिन भी तैयार किया गया।

बैठकों की शुरुआत दिल्ली किसान आन्दोलन (26 नवम्बर 2020 से 11 दिसंबर 2021) के दौरान हुई। आन्दोलन का अराजनैतिक चरित्र, विश्व बाजार बनाम स्थानीय बाजार, समर्थन मूल्य, आय, बेरोजगारी, भावी समाज की दृष्टि में किसान का स्थान, समाज संगठन के आधार, खाद्य-संप्रभुता, ज्ञान और सत्ता, वितरित सत्ता और स्वायत्तता, संत-परम्परा, न्याय-त्याग-भाईचारा और समाज परिवर्तन इत्यादि विषयों पर सघन चर्चाएँ हुईं। लोकविद्या विचार की शुरुआत किसान आन्दोलन में भागीदारी से है यह बात इन चर्चाओं में चिह्नित करती है। इस धरातल पर 'न्याय,

त्याग और भाईचारा: किसान आन्दोलन और भावी समाज दृष्टि' पुस्तक का प्रकाशन 2022 में विद्या आश्रम स्थापना दिवस (1 अगस्त) पर किया गया।

आगे की बैठकों में लोकविद्या समाज की चेतना का रूप तथा स्वराज ज्ञान पंचायत का प्रस्ताव, वितरित सत्ता के लिए और जाति, खाप तथा समाज की भूमिका, स्थानीय बाजार के जरिये विषम विनिमय रोकने की संभावना इन विषयों पर चर्चायें हुईं। विद्या आश्रम की नई वेबसाइट पर बात हुई। बहिष्कृत समाज, स्वदेशी समाज और लोकविद्या समाज इन धारणाओं के साझा अर्थों पर विचार किया गया। साथ ही वर्तमान स्थिति में दुनियाभर में राज्य, पूंजी और आधुनिक ज्ञान (साइंस) के सम्मिलन की प्रक्रिया पर सतत बातचीत होती रही है। समाज परिवर्तन के कला-मार्ग के विचार पर चर्चा हुई। लोकविद्या समन्वय समूह और लोकविद्या कला केंद्र की कला-समागम ज्ञान-यात्रा, सत्-सपता, हाट-सत् के स्थान इन पहलों पर चर्चा हुई। “किसान आन्दोलन, जल-जंगल-जमीन आन्दोलन, पर्यावरण और सामाजिक न्याय के आन्दोलन, लोकविद्या जन आन्दोलन और स्वराज के साझा स्फुट विचारों का लोकविद्या विचार से क्या रिश्ता है?”, इस प्रश्न का उत्तर खोजने के प्रयास हुए।

2023 से उठ रही कृत्रिम प्रज्ञा को लेकर विस्तृत बात हुई। मोटे तौर पर इससे इन्टरनेट के लोगों द्वारा उपयोग और रोजमर्रा के कामों पर संभावित प्रभाव, मनुष्य की प्रज्ञा से हो रही इसकी तुलना के अर्थ और लोकविद्या समाजों पर इसके आगमन से बढ़ता संकट इन बातों पर समझ बनाने के प्रयास हुए। बौद्धिक सत्याग्रह पर एक और पुस्तिका प्रकाशित करने पर भी प्राथमिक बातें हुईं। फरवरी 2025 में कुवेम्पु विश्वविद्यालय, शिमोगा, कर्नाटक में आयोजित “डायलॉग्स ऑन नॉलेज इन सोसायटी” पर किसी भी यूनिवर्सिटी में हुए अपने किस्म के पहले सम्मेलन में सक्रिय भागीदारी पर विस्तार से बात हुई, जिसके बलपर इसमें सफल भागीदारी की गई।

आन्दोलनों की अराजनीतिकता और इसके साथ ही समाज परिवर्तन के आन्दोलन के राजनीतिक होने की जरूरत को लोकविद्या और सामान्य जीवन के परिप्रेक्ष्य में एक साथ समझने के प्रयास हुए। इस दृष्टि से ‘बहुजन’ शब्द की योग्यता पर बात हुई। पिछले वर्ष में इस चर्चा से दो प्रमुख बातें सामने आई हैं जिनपर आगे विचार और काम जारी है: (i) बहुजन समाज शोध प्रस्ताव तथा बहुजन समाज सर्वे के माध्यम से बौद्धिक सत्याग्रह और ज्ञान की राजनीति को आगे बढ़ाना, और

(ii) कला तथा स्वराज के परस्पर संबंधों पर विचार और कार्यक्रम. अक्टूबर 2025 की बहुजन स्वराज पंचायत का आयोजन किस प्रकार का हो इस पर इन बैठकों में विस्तार से चर्चा हुई.

इन ऑनलाइन बैठकों में घटी तमाम चर्चाओं की बदौलत जितना भी लेखन-कार्य सदस्यों ने किया है वह सारा का सारा विद्या आश्रम की वेबसाइट <https://vidyaashram.org> पर उपलब्ध है जो Quick Links menu में, और Publications पेज पर तथा इस पेज के साइडबार में Articles and Reports के अंतर्गत दी हुई लिंकों से पढ़ा जा सकता है.

लोकविद्या डिबेट्स ग्रुप में वाराणसी से सुनील सहस्रबुद्धे और चित्रा सहस्रबुद्धे, झांसी से कृष्ण गांधी, कोलकता से अभिजीत मित्र, इन्दौर से संजीव कीर्तने, नागपुर से विजय जावंधिया और गिरीश सहस्रबुद्धे, हैदराबाद से नरेश शर्मा, बेंगलुरु से जे. के. सुरेश और जी. शिवरामकृष्णन्, मैसूरु से कृष्णराजुलू तथा दिल्ली से अविनाश झा शामिल हैं. 1 जून 2021 से झूम पर इन बैठकों का आयोजन नागपुर से गिरीश सहस्रबुद्धे करते रहे हैं.

इसके अलावा वाराणसी में उपस्थित साथी विद्या आश्रम पर सप्ताह में एक बार मिलते हैं. ये हैं, चित्रा, सुनील, लक्ष्मण प्रसाद, कमलेश कुमार, रामजनम, फ़ज़लुर्हमान, पारमिता, हरिश्चंद्र, सुरेश प्रताप, राजेन्द्र मानव, एहसान अली, मु.अलीम, विनोद. यहाँ पर विद्या आश्रम शोध प्रस्ताव पर आगे बढ़ने के साथ-साथ विभिन्न वैचारिक और सांगठनिक विषयों पर चर्चा की जाती है. 'सुर साधना' पत्रिका के प्रकाशन की तैयारी का भी यही स्थान है. इस तरह आश्रम पर होने वाली चर्चाएँ और उपरोक्त ऑनलाइन चर्चाएँ वे स्थान हैं जहाँ लोकविद्या, सामान्य जीवन, बौद्धिक सत्याग्रह, ज्ञान पंचायत, स्वराज तथा इनसे जुड़े विषयों पर सघन चर्चाएँ होती हैं तथा नए कार्यक्रम इजाद होते हैं. जैसे, अक्टूबर 2025 की बहुजन स्वराज पंचायत.

-चित्रा

## स्वराज की ज्ञान दृष्टि

-अविनाश झा

ऐसा माना जाता है कि कुछ हजार साल पहले दुनियाँ में कई सभ्यताओं का विकास हुआ जिससे मनुष्य जीवन में मूलभूत बदलाव आए। मानव समाज अपनी पूर्ण जटिलता में उभरा। यँ तो सभ्यता के उदय के कई आयाम हैं पर लिपि या लिखावट के आविष्कार को इसका मुख्य चिह्न माना गया। भारत के संदर्भ में ऐसी परिभाषा उपयुक्त नहीं लगती क्योंकि वैदिक सभ्यता मुख्यतः मौखिक ही थी।

हमारा मानना है कि ज्ञान को संगठित करने की प्रक्रिया से ही सभ्यताओं का जन्म होता है। सभ्यता, यानी सिविलाइजेशन, संगठित ज्ञान के उदय का परिणाम है। इस संगठन से ज्ञान की श्रेणियाँ बन जाती हैं। जैसे भारतीय सभ्यता में किसी समय वेदों के सर्वोच्च ज्ञान के रूप में स्थापना। वेदों के अंदर आपस में भी ज्ञान की श्रेणियाँ दिखती हैं। ज्ञान की श्रेणी-बद्ध व्यवस्था के विरोध के स्वर भी परंपरा में सुनाई पड़ते हैं। कबीर की वाणी में हम संगठित ज्ञान के खिलाफ़ ज्ञान की व्याख्या सहज ज्ञान के रूप में देखते हैं। कबीर 'षड्-दर्शन' से अपने समय के संगठित ज्ञान को इंगित करते हैं।

यह गौरतलब है कि सभ्यताओं के उदय से पहले ही हजारों-लाखों वर्षों से मनुष्य जीवन चलता आ रहा है। सभ्यताएं बनती हैं, बिगड़ती हैं, और नष्ट भी होती हैं। किंतु सामान्य जीवन चलता ही रहा है। सामान्य जीवन में ज्ञान, नैतिकता, और सहजीवन के सारे आधार एक साथ विद्यमान होते हैं।

मनुष्य कभी अकेला नहीं मिलता, हमेशा दूसरे मनुष्यों के साथ ही एक जीवन प्रवाह में दिखता है। संप्रेषणता या भाषा, कल्पना, नैतिकता, ज्ञान इत्यादि जीवन में एक-दूसरे से गुँथे हुए ही आते हैं। हम क्रमबद्ध तरीके से नहीं कह सकते हैं कि पहले ये हुआ और फिर वो हुआ। क्योंकि हर एक, दूसरे के बिना नहीं हो सकता है। हम जब अतीत में पीछे की ओर जायें तो हमें मानवता या सामान्य जीवन की कोई निश्चित शुरुआती बिंदु नहीं मिलता। अगर हम शुरुआती बिंदु ढूँढ़ने की कोशिश करें तो मानव जीवन के सारे अनिवार्य तत्व एक साथ ही संपूर्ण रूप से उभर कर आने होंगे। लोक और मानवता की उत्पत्ति की कहानियाँ हमारी कल्पना की उपज हैं और जीवन की

समझ बनाने में उनका मूल्य भी है। पर किसी एक कहानी जैसे एवोल्यूशन की थ्योरी का इस समझ पर कोई एकाधिकार नहीं है।

सामान्य जीवन विविधताओं का भंडार है और ये बदलता रहता है - नित नवीन है। सामान्य जीवन में ज्ञान का रूप ही है लोकविद्या, यानी कि असंगठित ज्ञान जो सदैव गतिशील होता है। और समाज के संगठन का स्वरूप है स्वराज। हमारी समझ से मनुष्य के सामाजिक जीवन की मूल प्रवृत्ति स्वराज है। कह सकते हैं कि 'Swaraj is the natural state of society (or humanity)'

इसके विपरीत आधुनिकता की दृष्टि में समाज की मूल प्रवृत्ति 'अराजकता' है। पश्चिम के एक महत्वपूर्ण विचारक हॉब्स के अनुसार 'राज्य' के उदय से पहले मनुष्य जीवन पाशविक और क्रूर होता है। मानव समाज की मूल प्रवृत्ति 'हर एक का हर किसी और के साथ युद्ध' की है। इस स्थिति से मुक्ति के लिए लोग एक संप्रभु राज्य को अपनी स्वायत्तता सौंप कर इसके बदले राज्य से अपनी सुरक्षा को प्राप्त करते हैं। हॉब्स एक तरह के सामाजिक अनुबंध की कल्पना करते हैं जिसके तहत सारे लोग मिल कर अपनी स्वतंत्रता का समर्पण करते हैं जिससे संप्रभु राज्य की स्थापना होती है, जो कि मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाता है। आधुनिक सोच में एक सामाजिक अनुबंध के बनने पर ही मनुष्य सभ्य बनता है। इस अनुबंध की अभिव्यक्ति राज्य के रूप में होती है।

चाहे जिस प्रक्रिया से राज्य संगठित होते हों, राज्य के संगठित होते ही समाज का विभाजन बहुजन और विशिष्ट-जन में हो जाता है। लोकविद्या और स्वराज परंपराएं चलती रहती हैं पर इनका स्थान बहुजन के सामान्य जीवन में होता है। सामान्य जीवन की ये शर्त है कि उसमें सत्य, भाईचारा, सौंदर्य के मूल्य, मूल्य के रूप में निहित होते हैं। अगर सभ्यता को सभ्य समाज के अर्थ में लिया जाए (जिसके मूल में वही मूल्य हैं), तो सभ्यता हमेशा ही मनुष्य समाज का एक गुण रहा होगा।

भारतीय परंपराओं में एक तरफ तो वेद की वर्चस्ववादी व्याख्या और श्रेणी बद्ध ज्ञान की संरचना देखते हैं। दूसरी ओर ज्ञान के लिए मनुष्य की काया को ही पर्याप्त माना गया है। कोई भी, कहीं भी, बिना किसी बाहरी अधिसंरचना के ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इसके साथ ही लोक में व्याप्त ज्ञान यानी लोकविद्या और शास्त्रीय ज्ञान के बीच पारस्परिक संबंध की संभावना निहित है। दूसरी सभ्यताओं में भी शायद रही हो।



वैसे यूनानी सभ्यता में 'नगर' का एक विचार है और ज्ञान के स्थान के रूप में नगर को ही माना गया है। गैर-नागरी जीवन को नगर की जरूरतों को पूरा करने के माध्यम के रूप में ही देखा गया।

आधुनिक विज्ञान के उदय के सौ-दो सौ वर्षों के बाद यूरोप में विश्वव्यापी वर्चस्व का एक विचार उभरता है। नए ज्ञान और ज्ञान के नए संगठन के आधार पर यूरोप द्वारा सारी दुनिया पर हावी होने का और सारी दुनिया के उत्थान का एकमात्र स्रोत बनने का साम्राज्यवादी विचार बनने लगता है। 'साइंस' की अवधारणा बनती है और सभ्यता का एक विमर्श बनता है। शुरुआती दौर में साइंस को 'नेचुरल फिलोसफी' यानी प्रकृति दर्शन के रूप में पहचाना जाता है और सभ्यताओं को धर्म के आधार पर पहचाना जाता है।

इसके बाद ऐतिहासिक सभ्यताओं के तथा-कथित धार्मिक आधार का अतिक्रमण करते हुए एक नई सार्वभौमिक ज्ञान आधार की कल्पना बनती है। यूरोपीय ज्ञानोदय यानी एनलाइटनेमेंट के रूप में समाज में एक ज्ञान आंदोलन उभरता है। साइंस के आधार पर मानव समाज को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाना और अभाव से मुक्ति दिलाना - यह कल्पना सारे विश्व पर हावी हो जाती है। साइंस के विशाल अधिसंरचनाएँ (इंफ्रास्ट्रक्चर) सारी दुनिया में फैल जाते हैं। साइंस के अंदर ज्ञान की व्यवस्था में भौतिकी ही सारे ज्ञान का आधार बनता है। साइंस की चकाचौंध में ज्ञान की अन्य धाराएँ अंधकार में चली जाती हैं। इसके साथ ही गैर यूरोपीय मानव की मानवता भी अंधकार में चली जाती है।

अज्ञान के अंधकार और भौतिक अभाव से मुक्ति का सपना तो बीसवीं शताब्दी में टूट कर बिखर गया। यूरोपीय साम्राज्यवाद और औपनिवेशिक शासन के खिलाफ दुनिया भर में मुहिम छिड़ी और स्वतंत्र देशों की अपनी सरकारें बनीं। लेकिन इस उत्तर-औपनिवेशिक दुनिया में ज्ञान की औपनिवेशिक श्रेणियाँ बनी रहीं जिससे स्वराज मजबूत होने की बजाय कमजोर ही होता गया। विनोबा ने कहा है कि मुगलों के शासन में देश गुलाम था पर गाँव आज़ाद थे। अंग्रेज़ों के समय देश और गाँव दोनों गुलाम थे। स्वतंत्रता के बाद देश आज़ाद है पर गाँव गुलाम है।

आधुनिकता के उत्तर काल में सभ्यता-मूलक ज्ञान की एक नई पहचान बन रही है जो सिर्फ ग्रीको-यूरोपीय सभ्यता तक सीमित नहीं है। सभ्यता विमर्श में एक

तरफ़ तो सभ्यताओं को श्रेणी बद्ध तरीके से देखा जाता रहा जिसमे यूरोपीय सभ्यता शीर्ष पर है। दूसरी ओर सभ्यता को विरोध के स्वर में स्वायत्तता के अर्थ में देखा गया। खास कर अफ्रीकी सभ्यता के दावे में यूरो-अमरीकन साम्राज्यवाद के विरोध का स्वर मुखर है जिसकी अभिव्यक्ति आज भी पैन-अफ्रीकन विचारधारा के रूप में देखी जाती है।

सवाल ये उठता है कि भारतीय सभ्यता क्या दावा प्रस्तुत कर रही है। भारतीय सभ्यता ज्ञान का कैसा दावा प्रस्तुत कर रही है? भारतीय सभ्यता के जो विमर्श आज प्रचलित हो रहे हैं उनमें जोर इस पर है कि हम कितने महान थे, कि साइंस की कई उपलब्धियाँ हमे पहले ही हासिल थीं। यहाँ ये स्पष्ट है कि सभ्यता और ज्ञान के पैमाने अब भी यूरोपीय ही हैं।

भारतीय सभ्यता में समाज की मूल प्रकृति के रूप में स्वराज की पहचान थी जिसके कारण भारत विविधताओं का देश रहा है और समाज के संगठन में स्थानीय व्यवस्थाओं की परंपरा रही है। क्या स्वराज ही भारतीय सभ्यता की वह विशेष पहचान है जो भविष्य की राह खोलता है? स्वराज ही आज की दुनिया में भारत का सबसे मजबूत दावा हो सकता है। स्वराज की एक शर्त है कि हर एक मनुष्य ज्ञानी है। हम एक असंगठित ज्ञान का दावा पेश कर सकते हैं। सामान्य जीवन के असंगठित लोकस्थ ज्ञान के बिना सभ्यता ज़िंदा नहीं रह सकती।



## बहुजन-समाज की राज परम्पराएँ 'स्वराज' हैं

-चित्रा सहस्रबुद्धे

स्वराज शब्द का इस्तेमाल पहली बार कब हुआ यह नहीं मालूम लेकिन स्वराज जैसी वितरित सत्ता की राज-व्यवस्थायें, हर काल में हमारे देश में रहीं, ऐसा इतिहासकार और विचारक मानते हैं। इन राज व्यवस्थाओं का पूरा-पूरा चित्र तो नहीं मिलता लेकिन कुछ प्रमाणों से स्पष्ट संकेत ज़रूर मिलते हैं। जैसे अनेक राजाओं के पास पूर्णकालिक सेना होने के प्रमाण नहीं मिलते या बहुत कम मिलते हैं। युद्ध यह हमेशा होने वाली घटना या आशंका नहीं थी। संकट के समय कुछ लोग अपने-अपने जीवनयापन के उद्यमों को छोड़कर सेना में शामिल होते और युद्ध समाप्त होने पर वापस अपने उद्यम (किसानी या कारीगरी) में लग जाते। साधु (भगत) वर्ष में एक दो बार परिवार में आकर गृहस्थी के कार्यों में हाथ लगाते। सामान्यतः लोक जीवन चलता रहता। प्रसिद्ध इतिहासकार डी.डी. कोसंबी कहते हैं कि ऐसा भी होता रहा कि खेतों में किसान काम करते रहते और थोड़ी दूरी पर दो राजाओं की सेनायें आपस में लड़ती होतीं ! यानि आम प्रजा पर इस घटना का बोझ न होता। राज-व्यवस्था कुछ इस तरह संगठित की जाती रही जिसमें राजा के पास सारे अधिकार नहीं सौंप दिये जाते रहे। ज्ञान, शिक्षा, न्याय, चिकित्सा, निर्माण, उद्यम, संसाधन, और सामाजिक/सांस्कृतिक गतिविधियों आदि के क्षेत्र गाँव-गाँव स्तर पर प्रजा स्वयं संगठित व संचालित करती रहीं। इतना ही नहीं गाँव की गतिविधियों में, धर्म, सामाजिक गतिविधियाँ एवं व्यवहार, आदि मामलों में राजा अथवा राज का सीधे हस्तक्षेप नहीं होता था। राज्य की भौगोलिक सीमायें बदलती रहीं, राजवंश बदलते रहे लेकिन राज्य का चरित्र इसी तरह के समाज-संगठन व सञ्चालन को निखारने में देखा गया। स्थान व कार्य-क्षेत्र के हर आयाम पर पंचायतों का गठन और इनके स्वायत्त अस्तित्व की मान्यता में यहाँ राज्य की वितरित सत्ता का आधार बना रहा। लेकिन ऐसे सभी तथ्यों को विश्वविद्यालयों में अध्ययन, शोध और विमर्श में कोई स्थान नहीं दिया जाता रहा और न कहीं इसका जिक्र ही होता रहा है। क्यों ?

स्कूल कालेज में जो इतिहास पढ़ाया जाता है, वो राजाओं के बीच हुए युद्धों को प्रमुख बनाता है और हार-जीत को श्रेष्ठता, मान-अपमान और विरासत का एक प्रमुख पैमाना बना देता है, जिसके बल पर जाने-अनजाने समाज में ऊँच-नीच और फूट पैदा होती है। कम से कम भारत में इतिहास लेखन अथवा इतिहास-शास्त्र यह विषय अंग्रेजों की देन रहा है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हमारे पास अपने पूर्व समय का कोई ज्ञान नहीं है बल्कि भूतकाल के हर पक्ष के बारे में जानकारी को संकलित करने के हमारे तौर-तरीकें और मूल्य भिन्न थे और ये भिन्न तरीके अधिकांश बहुजन-समाज के पास रहे हैं। उसी तरह देश में अधिकांश कालों में किसान, कारीगर अथवा आदिवासी समाजों के राजाओं यानि बहुजन-समाज के राजाओं का शासन रहा है। 1947 तक जो रियासतें थीं, उनमें अधिकांश बहुजन-समाज के राजा अथवा मुखिया रहे। आखिर क्या बात है कि बहुजन-समाजों के राजाओं के काल में भारत सोने की चिड़िया रहा, मुगलों ने इसे स्वर्ग भूमि कहा, अंग्रेजों की लिखी प्रारम्भिक (1775-1830 के बीच की) रपटों में भारत के वैभव और खुशहाल जनजीवन का ही वर्णन मिलता है। और अंग्रेजी काल के महज सौ वर्षों में भारत दरिद्र हो जाता है और बहुजन-समाज पामाल? और अब सूचना युग और वैश्वीकरण के दौर में देश को ही गिरवी रखने की नौबत आ गई?

आधुनिक सत्ता, राजनीति और ज्ञान की संस्थाओं (विश्वविद्यालय) ने जातीय विमर्श और राजनीतिक दाँव-पेच के माफ़त बहुजन-समाज की छबि को 'सदियों से गुलाम' की छबि का रूप दे दिया है। यह साजिश अंग्रेजों के साथ मिलकर कुछ उन लोगों ने की जो आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा को हासिल कर प्रोफेशनल वर्ग के जन्मदाता बनें। बहुजन-समाज की छबि को विकृत करने की इस साजिश में पूँजीवादी व्यवस्था और तंत्र का हर अंग शामिल रहा।

अगर बहुजन-समाज को इस साजिश से निकलकर एक सम्मानपूर्ण जीवन और समाज पुनः हासिल करना है तो उसे अपने ज्ञान (लोकविद्या), अपने दर्शन, अपने राज के प्रकार और अपने जीवन मूल्यों को नवीन कर पुनर्स्थापित करने के कार्यों में लगना होगा। यह देश बहुजन-समाज का था और बहुजन-समाज के ज्ञान, जीवनमूल्य

और प्रयासों के बल पर ही खुशहाल, भाईचारा और समानता पर आधारित समाज-व्यवस्था का निर्माण करेगा.

**इस लेख में हम तथ्यों के आधार पर बहुजन-समाज की राज परम्पराओं के बारे में, जो स्वराज की व्यवस्थाओं के बहुत निकट जान पड़ती हैं; कुछ जानकारीयां रख रहे हैं.**

ज्ञात इतिहास में कम-अधिक पैमाने में ऐसी ही व्यवस्थायें भारत के भू-भाग पर बनी रहीं और इनके बल पर यहाँ की सभ्यता ने आकार लिया। मनुष्य ने सक्रियता के वे उच्चतम शिखर हासिल किये, जिनके अवशेष आज भी हम देखते हैं। ऐसी व्यवस्थाएं लगभग अंग्रेजों के आने के समय तक अस्तित्व में रहीं; इस बात के सबूत अंग्रेजों की ही लिखी कई रिपोर्टों में भी हैं। अंग्रेजों ने अपना राज कायम करने से पहले 18वीं सदी में भारत के कई क्षेत्रों जैसे मद्रास प्रेसीडेंसी, बंगाल, बिहार, पंजाब, में सर्वेक्षण करवाये और उस समय की शिक्षा, उद्योग, कृषि, चिकित्सा, तकनीकी आदि की व्यवस्थाओं का अध्ययन किया तथा विस्तृत रिपोर्टाज बनाये। इन सर्वेक्षणों और अध्ययनों की रिपोर्टों के आधार पर 18वीं सदी में भारत के समाज-संगठन का जो चित्र उभरता है, उसे कुछ इतिहासकारों ने सामने लाया है, जो हमारी ऊपर लिखी बातों की पुष्टि करता है। यह बहुजन-समाज द्वारा निर्मित और संचालित एक वितरित सत्ता और खुशहाल समाज का चित्र है। जिसकी एक झलक हम यहाँ रखना चाहेंगे।

#### **(क) गाँव, कृषि और उद्योग :**

अंग्रेजों ने यहाँ के गाँव, कृषि और उद्योगों का अध्ययन बहुत विस्तार में किया। तमिलनाडु में चेंगलपटूर नाम के क्षेत्र में (अभी का कांचीपुरम जिला और थिरुवल्लूर) के लगभग 2138 गाँवों के सर्वेक्षण की मेजर क्रिश्चन बर्नार्ड द्वारा लिखी वर्ष 1763 की एक विस्तृत रिपोर्ट है। उसी तरह 1795-96 की कप्तान थोमस हल्कोट, 1878 की ए.के. ह्यूम और 1890 की जान आगस्टस वोइलकर की रिपोर्ट्स हैं, जिनमें भारत के किसानों के ज्ञान और कार्य की बहुत प्रशंसा की गई है। इनमें किसानों के बीज, खाद, फसल, सिंचाई, उपकरण, पशुओं और खेती की व्यवस्थाओं को बेहतरीन बताया है और कहा है कि इन सब में सुधार की कोई गुंजाइश नहीं है।

लेकिन अंग्रेज सरकार को इंग्लैण्ड के उद्योगों और कारखानों के हित में भारत की खेती का संगठन कुछ इस प्रकार बदलना था, जिससे भारत के खेतों में इंग्लैण्ड के कारखानों के लिए अधिक से अधिक कच्चा माल पैदा हो और इंग्लैण्ड के रासायनिक उद्योग के लिए बाज़ार भी मिले। अंग्रेजों के आने के बाद ही हमारे यहाँ बड़े पैमाने पर कपास, अफीम, चाय, नील, रबर, गेहूँ की व्यावसायिक खेती शुरू हुई। इसके पहले खेती मुख्यतः अन्न, कपास और जीवनोपयोगी सामानों को पैदा करने का उद्यम रही।

अंग्रेजों की उपरोक्त रपटों में भारत के सामान्य किसान के ज्ञान का जो वर्णन मिलता है, उससे तकनीक, बीज, फसलें, खाद, इंधन, भण्डारण-वितरण, कर, जल-व्यवस्था, आदि के बारे में गाँवों का एक ऐसा चित्र उभरता है जिसमें उत्पादन, वितरण, और भोग के हर चरण पर स्वराज का दर्शन होता है। खेती-किसानी-उद्योग के इर्द-गिर्द समाज-संगठन का ऐसा रूप खिलता जाता दिखाई देता है, जिसमें मनुष्य जीवन की भौतिक व आध्यात्मिक गतिविधियों और आवश्यकताओं का 80-90 फीसदी स्थानीय स्तर पर ही पूरा हो जाये। ये एक ऐसे गाँव का चित्र खड़ा करते हैं, जिसमें अनेक ज्ञानी और कर्तृत्ववान लोग रहते हैं, जो मिलकर इन आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। शोध, प्रयोग, सलाह, विवेचन, विमर्श, शिक्षा आदि अनेक चरणों से गुजरता यह सृजन वितरित और स्वायत्त सत्ताओं का जाल बनता दिखाई देता है जिसके आधार पर समाज के संगठन और सञ्चालन के विविध रूप आकार लेते रहे। जिस क्षेत्र में जैसी मिट्टी, पानी, मौसम और संसाधन की प्राकृतिक स्थितियाँ रहीं उसी के अनुसार उत्पादन के प्रकार, ज्ञान की विशिष्टता और समाज संगठन और सञ्चालन के प्रकार भी तय होते रहे। समाजों में विविधता और विशिष्टता बनी रही।

इतिहासकार और समाज विचारकों के अनुसार भी 18वीं सदी में अंग्रेज़ अधिकारियों की रिपोर्टें यह कहती हैं कि 18वीं सदी के भारत के किसान की आय इंग्लैंड के किसान से अधिक थी। वर्ष 1750 और 1800 के करीब यूरोप के अलग-अलग देशों में किसानों से 50 से 80 फीसदी उत्पादन ले लिया जाता था। इन्हीं वर्षों में बंगाल में अंग्रेजों ने ज़मींदारी स्थापित की जहाँ तर्क यह दिया गया कि भारत के किसान का हक इंग्लैंड के किसानों के हक से ज्यादा तो नहीं हो सकता, यानि किसानों से उपज का आधा हिस्सा लेने में कोई गलत न होगा। जबकि इसके पहले के ज़माने में जहाँगीर के समय भी उपज का 5 फीसदी ही किसानों से लिया जाता था।

औरंगजेब के ज़माने में भी 20 फीसदी से अधिक न था। 15वीं सदी तक भारत में कई इलाकों में भूमि कर था ही नहीं और था भी तो बहुत कम। बंगाल में अंग्रेजों के पहले खेती की आधी उपजाऊ ज़मीन से कोई कर नहीं दिया जाता था। इस आधी उपज से प्राप्त आमदनी को स्थानीय व्यवस्थाओं जैसे सिंचाई, सुरक्षा, धर्मशाला, आस्था के स्थान, धार्मिक व सांस्कृतिक आयोजन, शिक्षा, चिकित्सा आदि पर और इन व्यवस्थाओं को संचालित करने वाले परिवार/समाजों पर खर्च किया जाता, जो कुल उपज का 25 से 30 फीसदी होता था; शेष भाग ऊपर के स्तरों पर जाता था और अंत में बचा-खुचा स्थानीय राजा और आगे सल्तनत को। (सन्दर्भ : विद्या आश्रम का प्रकाशन, स्वराज पुस्तकमाला-1 “स्वराज पर विमर्श के सन्दर्भ” 2017, पृष्ठ 2-5)। यह भी कि भारत के कई इलाकों में ऐसे गाँव थे जहाँ उपजाऊ ज़मीन का कुछ वर्षों की अवधि में गाँव के किसान परिवारों में पुनर्वितरण होता था। पुनर्वितरण 3 वर्ष से लेकर 30 वर्षों में होता पाया गया है। ऐसे गाँवों को उत्तर भारत में ‘भाईचारा गाँव’ कहा जाता था।

भारत में उद्योगों का उत्पादन कलात्मक और उच्च गुणवत्ता का होता रहा। इतना ही नहीं, दुनिया के कुल औद्योगिक उत्पादन में इसका हिस्सा किसी भी यूरोप के देश से ज्यादा था। अंग्रेज अधिकारी जार्ज बर्डवुड, जो अंग्रेज सरकार की अनेक संस्थाओं/विभागों में अधिकारी रहे, की 1880 में एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होंने यहाँ के उद्योगों का बखान किया है। ये उद्योग छोटी-छोटी इकाइयों में होते रहे। अंग्रेज सरकार ने अपने कारखानों के उत्पाद की बिक्री के लिये इन्हें उजाड़ दिया। बड़े कारखानों को स्थापित करने में सहयोग दिया। इसके चलते किसानों की ही तरह बहुत बड़े पैमाने पर कारीगर अपने उद्योगों से बेदखल हो गए। किसान और कारीगर समाजों को बहुत बड़े पैमाने पर मजदूर बना दिया गया। जितने मजदूरों को नए स्थापित कारखानों में काम मिला उससे कई गुना लोग बेरोजगार हो गये। आज़ादी के बाद यही नीति जारी रही और आज भी है।

गाँव और समाजों के हित में काम कर रही कृषि और उद्योगों की व्यवस्था को अंग्रेजों ने बल पूर्वक ध्वस्त कर ज़मींदारी व्यवस्था स्थापित की और कर का बोझ बढ़ाकर (उपज का 50-80 प्रतिशत) किसानों की ज़मीने हड़पने का आधार बनाया, किसानों को ज़मीनों से बेदखल किया। अंग्रेजों के पहले किसान को ज़मीन से बेदखल

नहीं किया जा सकता था। यह इंग्लैण्ड और यूरोप में औद्योगीकरण को तेज़ करने के लिए हुआ था। आज़ाद भारत में लोकतंत्र के तहत भी यही प्रक्रिया चलती रही, देश में औद्योगीकरण को तेज़ करने के लिए किसानों पर बोझ बढ़ाया जाता रहा, गाँव हर तरह से गरीब होते चले गए, अपने दर्शन, सम्पत्ति और समृद्धि को खोते चले गये। गाँवों के अन्दर कानून और बल के सहारे दिल्ली की केन्द्रीय राजसत्ता की दखल हर क्षेत्र में बढ़ती ही चली गई और अब यह दखल परिवार और खुद मनुष्य के शरीर तक पहुँच चुकी है। परिणाम सामने है कि आज हजारों लाखों किसानों का ऐतिहासिक आन्दोलन देश की राजसत्ता को झकझोर रहा है।

अंग्रेजों की रिपोर्टों के अनुसार गाँवों में जल व्यवस्था के लिए पोखरे और तालाबों का निर्माण और देखभाल गाँव वाले ही करते थे। कहीं-कहीं ये बहुत अदभुत हैं व कला और तकनीकी की दृष्टि से अद्वितीय हैं। सिंचाई और पेय जल की व्यवस्था और देख-रेख के ज्ञानी गाँव में ही रहते थे। उपजाऊ और बंजर ज़मीनों की नपाई व लेखा-जोखा, सिंचाई, फसलों की सुरक्षा और ज़मीनों से सम्बंधित विवादों का निपटारा आदि कार्य गाँव के ही लोग करते थे। इतिहासकार कहते हैं कि महाराष्ट्र में यह काम महार जाति के लोग किया करते थे। भारत के अलग-अलग हिस्सों में ऐसी जातियाँ मिलती हैं, जो ये काम करती रहीं। देश के हर हिस्से में जल संचय की समृद्ध परम्परा रही; कुँए, तालाब, बावड़ी, और सिंचाई के निर्माण के तथा देखभाल, प्रबंधन और सञ्चालन के कारगर ढंग रहे, इसके प्रमाण भी हैं।

इतिहासकारों के अनुसार कृषि में लगने वाली तकनीक, प्रक्रिया, उपकरण, उपयोगिता और गुणवत्ता को जांचने, परखने, और तय करने के लिए केन्द्रीय सत्ता की दखल नहीं थी। आज भी ऐसे लोग मिलते हैं जो धरती के नीचे जल कहाँ मिलेगा, कुआँ बनाने के लिए कितनी खुदाई की ज़रूरत होगी आदि बताने का ज्ञान रखते हैं। इतिहासकार यह मानते हैं कि 1830 में दुनिया के औद्योगिक उत्पादन में भारत और चीन का औद्योगिक उत्पादन मिलकर 60 प्रतिशत से ज्यादा था। उद्योगों की वितरित व्यवस्थाओं ने जहाँ वस्तुओं की खपत को लोकोपयोगी बनाकर रखा वहाँ ये भी कि कारीगरों को पर्याप्त रोज़गार मुहैया कराये। इससे यह साबित होता है कि पर्याप्त उत्पादन केवल साइंस और आधुनिक टेक्नोलॉजी पर निर्भर नहीं हैं।



कुल मिलाकर सामान्य जीवन में राज्य की दखल बहुत मामूली रही और प्रजा समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने में हर स्तर पर अपने ज्ञान, श्रम और भाव के साथ सक्रिय और सक्षम थी। हमारे देश में राज्यसत्ता किसी एक ही जाति के पास नहीं हो ऐसा तो ज्ञात इतिहास में किसी भी काल और क्षेत्र में दिखाई नहीं देता। ज्यादातर राजा किसान, कारीगर अथवा आदिवासी जातियों के ही रहे हैं और उन्हीं के काल में समाजों ने हमारी गौरवशाली संस्कृति को गढ़ा है। तथ्य है कि इंग्लैण्ड के राजाओं की तुलना में भारत के राजाओं का रहन-सहन और जीवन शैली समाज के अधिक करीब और कम खर्चीली रही। महलों और किलों में सार्वजनिक स्थान अधिक थे और राजा के निजी परिवार के स्थान सीमित होते थे।

#### (ख) ज्ञान :

अंग्रेजों की इन रिपोर्ट्स में यह खुलकर सामने आता है कि पहले गाँव ज्ञान के गढ़ थे। जीवन की हर ज़रूरत को पूरा करने के लिए ज्ञान, वित्त अथवा संसाधनों के लिए आज की तरह उन्हें राजसत्ता की ओर देखना नहीं पड़ता था।

ज्ञान की सत्ता भी एक या कुछ ही जातियों अथवा संस्थाओं में केन्द्रित नहीं रही। मनुष्य गतिविधि के हर क्षेत्र का ज्ञान अलग-अलग समाजों के पास रहा और हर यह ज्ञान अपने में एक सम्पूर्ण विश्व था; यानि वे न केवल उस ज्ञान की मूर्त क्रियाओं के जानकार और विशेषज्ञ होते बल्कि उस ज्ञान के मार्फत वे अपनी विश्वदृष्टि (दर्शन) भी बनाते, जिसमें दुनियावी/गैर-दुनियावी शक्तियों व संबंधों के साथ उनके ज्ञान, कर्म और कर्तव्यों की भूमिका की व्याख्या व मीमांसा भी करते। ये मीमांसा/व्याख्या उनके ज्ञान और तकनीक की ही तरह निरंतर नवीन होती रहती। अगर गहराई में देखें तो हर समाज के पास शरीर, स्वास्थ्य रक्षा व चिकित्सा की अपनी अलग समझ, सिद्धांत और प्रणाली नज़र आएगी। इतना ही नहीं, अपने ज्ञान आधारित कार्यों की वजह से होने वाले रोग अथवा सामान्य शारीरिक रोगों की दवा ये समाज अपने-अपने ज्ञान क्षेत्र में उत्पादन में लगने वाले कच्चे माल, प्रक्रियाओं के उत्पाद अथवा उनके अवशेषों से करना जानते थे। इसलिए शारीरिक रोगों के बारे में समाज में एक साथ कई औषधियों का ज्ञान रहता था। हर समाज के अपने देवता रहे और इनकी पूजा और कार्य निबाहने की ज़िम्मेदारी किसी पंडित को नहीं बल्कि अपने ही समाज के किसी सदस्य को सौंपी जाती रही। हर समाज के अपने कई गुरु होते रहे (आज भी

समाजों में ऐसा ही है), जो उस समाज की विश्वदृष्टि (दर्शन) को निखारते। संत परम्परा ऐसे ही ज्ञान का बहता झरना रही है। इतना ही नहीं, विचारक और मनीषियों ने यह भी सामने लाया है कि वेद-उपनिषदों को लिखने वाले और बाद के कालों में तकनीक, शिल्प, कला-साहित्य, गणित आदि क्षेत्रों में सिद्धांत रचना और सृजन में केवल ब्राह्मण ही नहीं रहे, बल्कि अनेक जातियों के ज्ञानी रहे। गणित और तर्क जैसे अमूर्त विषयों पर कार्य करने के लिए प्रोत्साहन और व्यवस्थायें बहुजन-समाज की राज व्यवस्थायें ही देती थीं।

ऐसे समाजों में जहाँ ज्ञान की सत्ता भी समाज में वितरित रही हो, निर्णय स्थानीय सृजनकर्ताओं और उपभोक्ताओं के हाथ रहता है तथा बाहरी विशेषज्ञों अथवा केन्द्रीय राजसत्ता/प्रशासन की दखल सामान्यतः अनधिकृत हो जाती है। यह सोच स्थाई भाव (स्वभाव) बन जाता है कि एक ही वस्तु को बनाने के, एक ही कार्य को करने के अथवा एक ही मंजिल पर पहुँचने के लिये ज्ञान के कई प्रकार होते हैं और उनमें कोई ऊँच-नीच नहीं होती। स्वराज का बुनियादी आधार इस भाव में है। यह 'स्वभाव' प्राप्त करना ही सत्याग्रह का मार्ग है।

#### (ग) शिक्षा :

20 अक्टूबर 1931 को गांधीजी का लन्दन की रायल इंस्टिट्यूट ऑफ़ इंटरनेशनल अफेयर्स में भाषण हुआ था, जिसमें उन्होंने कहा कि पिछले 50 से 100 वर्षों के दौरान भारत में साक्षरता घट गई है और इसके लिए अँगरेज शासन जिम्मेदार है। कहते हैं कि इस टिप्पणी से अँगरेज सरकार के हलकों में तहलका मच गया। गांधीजी से सबूत मांगे जाने लगे। उस समय तो आन्दोलन और फिर गिरफ्तारी के चलते वे इसके सबूत नहीं दे पाये, लेकिन उन्होंने सबूत जुटाने की जिम्मेदारी कुछ विद्वानों को दी। बाद में इस बात के सबूत खुद अँगरेज अधिकारियों की कुछ रिपोर्टों में पाये गए। 1796 की फ्रा पाओलिनो दा बार्तोलोमियो की “भारत में बच्चों की शिक्षा”, 1820 में अलेक्जेंडर वाकर का “भारतीय शिक्षा, साहित्य आदि”, 1822-26 में “मद्रास प्रेसिडेंसी के देशज शिक्षा का सर्वेक्षण”, 1835-38 की डब्लू. एडम्स की “बंगाल में शिक्षा की स्थिति”, 1882 में जी.डब्लू. लाईटनर की “पंजाब में शिक्षा का इतिहास : कब्जे के समय से 1882 तक” जैसी रिपोर्टों में उस वक्त प्रचलित

व्यापक शिक्षा के बारे में भरपूर जानकारी मिलती है। इन रिपोर्टों के अनुसार हर गाँव में एक स्कूल था। स्कूलों में लिखने, पढ़ने, शिल्प (किसानी, कारीगरी भी) आदि सभी विषयों का व्यवस्थित पाठ्यक्रम था। विद्यार्थियों की संख्या भी कम न थी, सभी जाति के छात्र थे, कहीं कहीं लड़कियां भी संख्या में थीं। इन रिपोर्टों को सार्वजनिक करने की आज ज़रूरत है। वितरित सत्ता के आधार पर प्रभावी ढंग से संचालित ये विद्यालय कैसे थे यह जानना आज भी प्रासंगिक है।

इन विद्यालयों के प्रति अंग्रेजों की नीति क्या थी? इसे गांधीजी ने उसी भाषण में स्पष्ट किया, कहा “... अंग्रेज प्रशासकों ने, जब वे भारत आये, यहाँ जैसी व्यवस्थायें थीं उन्हें वैसे नहीं रहने दिया बल्कि उन्हें उखाड़ दिया। उन्होंने ज़मीन को खोदा (इन व्यवस्थाओं को समझने के लिए) और जड़ों को देखना जारी किया और फिर उन्हें वैसे ही सूखने के लिए छोड़ दिया।” (व्यवस्थायें मर गईं)।

1962 में इतिहासकार धरमपाल की पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसमें 18वीं सदी में भारत में जीवंत ज्ञान और तकनीकी के बारे में विस्तृत प्रमाण और जानकारी संकलित कर उसकी व्याख्या की गई है। उनकी दूसरी पुस्तक “भारत में शिक्षा का सुन्दर वृक्ष” में अंग्रेजों द्वारा लिखी गई उपरोक्त रिपोर्टों की विषद् व्याख्या है, जो गांधीजी के 1931 के लन्दन में दिए गए वक्तव्य की पुष्टि करती हैं।

#### (घ) कला :

भारत की कलाओं के विद्वान अध्ययनकर्ता और जानकार आनंदकुमार स्वामी ने 1910 में इलाहाबाद में हुये पांचवे औद्योगिक सम्मलेन में भारत की कलाओं पर ‘स्वदेशी, सत्य और असत्य’ नाम से एक विस्तृत लेख प्रस्तुत किया था, जिसमें भारत के कला और उद्योगों के ‘सृजनकर्ताओं’ के ज्ञान की गहराई को खोलकर सामने रखा और यूरोप के उद्योगों ने किस तरह इन्हें तबाह कर दिया यह भी बताया। इस लेख में उन्होंने यह याद भी दिलाया कि जार्ज बर्डवुड (1830-1917) ने 1880 में ही लिखा था कि ‘भारतीय स्त्री-पुरुषों को इस संकल्प को अपनी संस्कृति का अंग बना लेना चाहिए कि वस्त्र, आभूषण आदि अनिवार्यतः स्थानीय स्तर पर बनाये जाये और उनके डिज़ाइन भी स्थानीय ही हों’। जार्ज बर्डवुड ने भारत के उद्योगों की कलाओं का गहराई से अध्ययन किया और विस्तार से लिखा। उनके अनुसार

भारत में 'फाइन आर्ट' (जैसी कोई श्रेणी) नहीं है, और सामान्य जीवन में आवश्यक उपयोग के सृजन और दैनिक कार्य भी उच्च नफासत के साथ किये जाते हैं।

कला मर्मज्ञ निहारंजन राय के अनुसार स्त्रियाँ, किसान, कारीगर, आदि सभी 'सृजनकर्ता' ही होते हैं, वे 'विधाता' के रूप हैं। अनेक कला विचारकों के अनुसार यहाँ 'शास्त्रीय कला' नाम की कोई कला परम्परा नहीं रही। सिद्धांत और प्रस्तुति को अलग करके नहीं देखा गया और न ही जीवनावश्यक वस्तुओं के निर्माण के उद्योगों को कला कर्म से अलग अथवा कम आँका गया। ये सब उत्पादन क्रियाएं कलाकर्म ही मानी जाती रहीं। ज्ञान और कला अलग नहीं रहे। इन्हें कुटीर उद्योग, हस्तशिल्प उद्योग, लोक कला अथवा देसी कला, ये नाम तो 20वीं सदी में दिए गए जिससे उन्हें बड़े उद्योगों से भिन्न और साइंस से छोटा/हेय दिखाया जा सके।

#### (च) अद्भुत जीवनशैली का विकास

यहाँ जीवन के हर कार्य और क्रिया को करने के तरीकों में भी इंधन (ऊर्जा) और पदार्थों (कच्चे माल) का इस्तेमाल और उत्पादन वितरित व्यवस्थाओं द्वारा ही होने का आग्रह रहा। अलग-अलग स्थानों/क्षेत्रों पर लोग उत्पादन करें, स्थानीय संसाधनों के इस्तेमाल से करें, कम-से-कम ऊर्जा के माफ़त करें आदि। यह सोचना दुर्भावनापूर्ण ही है कि पहले के ज़माने में आवागमन के साधन न होने की वजह से ऐसे उत्पादन की व्यवस्था ने आकार लिया। लेकिन प्राचीन काल से दुनिया भर में भारत के उत्पादन पहुंचते रहने के प्रमाण मिलते ही हैं। यहीं नहीं दूर-दूर के स्थानों पर सामान्य लोगों का आना-जाना भी रहा।

भारत के वैज्ञानिक सी.वी.सेषाद्री ने, जो 1970 में आई.आई.टी. कानपुर में प्रोफेसर रहे और चेन्नई के श्री इ.एम.इम. मुरुगप्पा चेडियार शोध केंद्र के संस्थापक निदेशक थे, उन्होंने भारत के ग्रामीण और कारीगरों द्वारा इस्तेमाल की जा रही उत्पादन तकनीकियों का गहराई से अध्ययन किया। उनके अनुसार प्रकृति में लगभग सारे परिवर्तन (क्रियाएं) धीरे-धीरे और कम ऊर्जा-अंतरों (ताप, दबाव, मात्रा) पर होते हैं और इसी सिद्धांत को भारत के किसान, कारीगर और आदिवासी इस्तेमाल करते हैं। प्रकृति की लय में कार्य करने का यह उनका एक ज़बरदस्त आधार रहा है। यह हमारे किसानों/कारिगरों/आदिवासियों की तकनीकी और साइंस आधारित तकनीकी में एक महत्वपूर्ण अंतर है। साइंस आधारित तकनीकी बहुत अधिक ऊर्जा-अंतरों के

इस्तेमाल से तीव्र गति पर आधारित हैं। ये केन्द्रीकृत व्यवस्थाओं की मांग करती हैं, यानि एक स्थान पर अधिक इंधन, अधिक कच्चे माल को एकत्र करने, अधिक संख्या में कामगार, अधिक बड़े उपकरण/मशीन आदि की मांग करती हैं तथा अधिक खपत के लिए बाहरी बाज़ार की मांग करती हैं। ये व्यवस्थाएं खर्चीली भी होती हैं और हर तरह से हर क्षेत्र में, हर आयाम में गैर-बराबरी को बढ़ाती जाती हैं। साइंस आधारित तकनीकी में कचरा भी बहुत अधिक बनता है और बहुधा यह प्रकृति में जज़्ब नहीं होता तथा पर्यावरण के लिए घातक होता है। अधिक ऊर्जा-अंतरों और तीव्र गति पर आधारित उत्पादन और विकास ही विनाश का कारण बनता है। **इसीलिए गांधीजी की यह टिपण्णी रही कि यह नहीं है कि हमारे पूर्वज मशीन का आविष्कार नहीं कर सकते थे लेकिन वे जानते थे कि इसके नतीजे बुरे होंगे, इससे समाज का नैतिक ताना-बाना टूटेगा, इसलिए उन्होंने ऐसा नहीं किया।**

लगभग सभी सृजनकार्यों में, कृषि, उद्योग, गृहस्थी आदि में भी, 'नैतिक, सुन्दर और उपयोगी' में कोई भेद नहीं माना जाता। दैनिक जीवन की वस्तुयें, संबंध और प्रबंधन इसी दृष्टि से आकार लेते रहे। जीवन का कोई पक्ष, साधन, क्रिया आदि कला से अछूता नहीं रहा है। सब जगह शिल्प और कला को स्थान रहा। घर के आँगन, दरवाजे, दीवारें, ताखे, खिड़कियाँ, झरोखें, ओसारे, बरामदे, कुएं की जगत, तेल के कोल्हू आदि तो कला के नमूने होते ही थे, साथ में रसोई के बर्तन, उपकरण, पूजा के सामान, वस्त्र, आदि में कला अपने पूरे निखार पर रहती और उत्सवों में तो चरम को छू लेती। स्त्री-पुरुष सभी मिलकर इसमें भागीदार होते।

इस सन्दर्भ में एक बहुत ही अद्भुत उदाहरण देना यहाँ सही होगा। चेन्नई के अर्काट जिले के कई गाँवों में महाभारत का एक बड़ा नाट्य उत्सव कई वर्षों से मनाया जाता है, जिस पर तमिलनाडु के फिल्मकार सशिकान्थ अनंताचारी ने एक वृत्तचित्र 'केलई द्रौपदी' नाम से बनाया है। 20 दिन तक चलने वाला यह उत्सव वास्तव में भाईचारा और युद्ध विरोधी मनोभावों का उत्सव है और लोकशक्ति के लचीले रूप को सामने लाता है। महाभारत की इस नाट्य कथा में उस क्षेत्र की लोकस्मृति और इतिहास को कथा रूप में पिरोया जाता है। कला की हर विधा (चित्रकला, वास्तु, मूर्ति, कथा, काव्य, संगीत, नाट्य, खेल, आदि) और गाँव के जन-जन की सृजन क्षमता की भागीदारी के साथ यह उत्सव मनाया जाता है। महाभारत के इस नाट्य

उत्सव में एक प्रथा की कहानी है कि जब कोई राजा किसी प्रदेश को जीतता हुआ आता है तो उसे गाँव वालों के साथ गाँव की सीमा पर वार्ता करनी पड़ती थी। यह वार्ता ऐसे समझौते के लिए होती थी जिसके अंतर्गत राजा और उसकी व्यवस्था का गाँव में प्रवेश वर्जित रहे। इसके बदले राजा एक मांग करता जो सामान्यतः कर के रूप में होती। इस समझौते की निशानी गाँव के बाहर एक पत्थर लगा कर दी जाती। गाँव वालों की ओर से विजेता राजा (चाहे वह राजा मुसलमान हो) से हर बार यह वार्ता 'द्रौपदी' करती है। उत्तर भारत की 'खाप पंचायतों' में भी इस तरह की घटनाओं का जिक्र मिलता है।

‘बहुजन स्वराज’ के लिए यह विश्वास अर्जित करना अनिवार्य है कि समाज की किसी भी, छोटी अथवा बड़ी समस्या का हल समाज के पास उपलब्ध ज्ञान और संसाधनों के माफ़त हो जाता है, बशर्ते स्वायत्तता, न्याय तथा भाईचारा के साथ और प्रकृति की लय में जीने का हौसला हासिल हो।



## बहुजन-समाज एवं स्वराज

-बी. कृष्णराजुलु

### सभ्यताओं पर हमला :

पिछले 200 वर्षों के दौरान भारत के बहुतायत समाज, विशेषकर गाँव के लोगों को आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक मुख्यधारा से बाहर फेका जाता रहा है। ऐसा पढ़े-लिखे शिक्षित लोगों की उस जमात ने किया, जो अक्सर शहरों में रहते हैं और उन संस्थानों, कार्यालयों, उद्यमों में काम करते हैं, जो आधुनिक पश्चिमी शिक्षा व्यवस्था, उद्योग और वाणिज्य के आधार पर चल रहे हैं। यानि कि आधुनिक पश्चिमी शिक्षा व्यवस्था और उसके तौर तरीके जिनका प्राण हैं। मुख्य धारा से बाहर फेंके हुए इस बहुतायत समूह के लोग आम तौर पर स्कूल, कॉलेज इत्यादि नहीं गये हैं और उनका ज्ञान, उनका जीवन लोकविद्या में रचा बसा होता है, इसी कारण इन बहुसंख्य लोगों को अशिक्षित या अनपढ़ बताया जाता रहा है।

निष्कासन का सिलसिला अंग्रेजी राज में ही शुरू हो गया था। ब्रिटेन और दूसरे उपनिवेशवादी यूरोप के देश, जो भारत में अपनी हुकूमत स्थापित कर रहे थे, भारत में लोकविद्या के व्यापक विस्तार को समझने में असमर्थ थे और अनिच्छुक भी, और न ही लोकविद्या का लोगों के जीवन-यापन, जीवन संचार में जो महत्व है, उसकी उन्हें समझ थी। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में, यूरोप के कई देशों ने उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका, एशिया, आस्ट्रेलिया और अफ्रीका महाद्वीपों में अपना विस्तार करना शुरू किया। यहाँ के लोगों, उनके ज्ञान, उनके मूल्यों, उनकी संस्कृति और संस्कारों के प्रति शुरू से ही यूरोपी देशों ने हेय दृष्टि अपनायी, इन्हें प्रताड़ित, अपमानित करना शुरू किया- यहाँ तक कि इन सभी समाजों के ज्ञान प्रतिष्ठा को धूल धूसरित करने और इनकी कार्य पद्धतियों का निम्नीकरण करने का कार्य सुनियोजित तरीके से किया। **संक्षेप में, यह इन सभ्यताओं पर एक हमला था।** इस हमले से मुकाबले के और समाज परिवर्तन के प्रमुख दो मार्ग खुले। एक समाज की कमजोरियों को मुद्दा बनाते हुए और दूसरा समाज की शक्ति पर आधारित थे।

**कमजोरियों पर आधारित समाजों के विविध नामकरण:**

अंग्रेजों ने अपने शासन की वैधता स्थापित करने के लिए अपने आधीन ऐसे स्थानीय लोगों की जमात तैयार करनी शुरू की जो अंग्रेजों के बनाये स्कूल व कालेजों में पढ़े थे और जिन्हें अंग्रेजी राज में अनेक प्रकार की नौकरियाँ दी गईं-जैसे कि सरकारी दफ्तरों में, अस्पतालों में, अदालतों में, रेलवे में, पुलिस में, उद्योगों में, इत्यादि इत्यादि। इस जमात के लोग धीरे-धीरे पश्चिमी तौर-तरीके अपनाने लगे और अंग्रेजी सत्ता के प्रति वफादारी का भाव रखने लगे। इतना ही नहीं, मुख्यधारा से निष्कासित वर्ग के लोग भी, अपने बच्चों को, व्यवस्था के अंदर रोजगार के अवसर मुहैया कराने के लिए, अंग्रेजी स्कूल / कालेज भेजने की सथासंभव कोशिश करने लगे। इन सब लोगों को हम **पश्चिमीकृत-समाज** कह सकते हैं। बाकि बहुसंख्य समाज अपना जीवन-यापन लोकविद्या के आधार पर ही करता रहा, और क्योंकि इस समाज को मुख्यधारा से निकाल फेंका गया, इसे हम **बहिष्कृत समाज** कह सकते हैं।

डा० अंबेडकर ने अपने समय अछूतों, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति (SC, ST) को बहिष्कृत-समाज की संज्ञा दी। लेकिन, यहां इस शब्द को अलग अर्थ में इस्तेमाल किया गया है, जो **पश्चिमीकृत-समाज के उलट, बहिष्कृत -समाज को इंगित करता है और** जो सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक, सांस्कृतिक मुख्य धारा के तो बाहर है, किन्तु जिसके जीवन का आधार लोकविद्या में है। दक्षिण भारत के शुरुआती आंदोलनों में इन वर्गों को डिप्रेस्ड क्लासेस यानि दबे कुचले पीड़ित वर्ग की संज्ञा दी गयी और इसी आधार पर इनके लिए जाति-आधारित आरक्षण की मांग की गयी। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में सर्वप्रथम महाराजा बडौदा द्वारा, तत्पश्चात महाराजा मैसूर द्वारा आरक्षण की शुरुआत की गई। समय के साथ हमें यह अहसास हुआ कि बहिष्कृत शब्द समाज के इस विशालतम वर्ग की हीन दीन स्थिति यानी उनकी कमजोरी को उजागर करता है, न कि उनके अन्दर बसी हुई शक्तियों के प्रति हमारे ध्यान आकृष्ट करें।

**शक्ति पर आधारित नामकरण :**

निश्चित ही इस वर्ग के लोगों में अपनी अनेकानेक शक्तियाँ और खूबियाँ अन्तर्निहित हैं। बहिष्कृत शब्द उनकी सामाजिक इत्यादि स्थिति को तो बताता है, किन्तु उनकी उन सब शक्तियों को उजागर नहीं करता, जो इस समाज का जीवन



आधार हैं। अतः इन शक्तियों की पहचान कराता और इस समाज के लिए समानता की पहचान का द्योतक सही शब्द हम 'स्वदेशी-समाज' को मान सकते हैं। स्वतन्त्रता संग्राम में ब्रिटिश सत्ता का विरोध स्वदेशी के विचार से पुरजोर तरीके से किया गया। ब्रिटिश राज और उनके तौर तरीकों से चलने वाले समाज के सामने स्वदेशी का विचार मजबूती से उभर कर खड़ा हो गया। आजादी की लड़ाई में इसी स्वदेशी की भावना के रूप देखने को मिलते हैं-विशेषकर लोक आधारित उत्पाद, खादी को अपनाने पर जोर दिया जाना। हालांकि यहाँ यह गौरतलब है कि जब हम समाज के इस समूह को स्वदेशी-समाज की संज्ञा प्रदान कर रहे हो, हम इस वर्ग के लोगों की अपनी चेतना को इंगित नहीं कर रहे हैं। न तो हम कह रहे हैं कि इन लोगों को अपने पिछड़े और कमजोर होने का भान है, और न ही हम कह रहे हैं कि उन्हें अपने अन्दर की लोकविद्या की शक्ति की चेतना है।

आजादी के बाद निरंतर मुख्य धारा के बाहर फेके जा रहे इन समाजों को लगभग 30 वर्ष पूर्व से लोकविद्या आन्दोलन ने लोकविद्या-समाज संबोधित करना शुरू किया। इस लोकविद्या-समाज की शब्दावली में इन लोगों की वास्तविक शक्ति का दर्शन हो रहा था। हमारी यह समझ बन रही थी कि समाज के विभिन्न समूहों को उनकी विद्या के आधार पर ही देखा जाना चाहिये। **इस दर्शन से समाज का प्रमुख विभेद जो समझ आता है, वह है-लोकविद्या आधारित समाज और पश्चिमी ज्ञान पर आधारित समाज।** हालांकि लोकविद्या आधारित समाज के ऊपर पश्चिमी ज्ञान आधारित समाज का दबदबा है, इसके बावजूद यह समाज अपने जीवन के सब क्रिया कलाप अपनी विद्या यानि लोकविद्या से चलाता है। **लोकविद्या इस समाज की अन्तर्निहित शक्ति है।**

**लोकविद्या-समाज ही बहुजन-समाज है**

अब हम बहुजन शब्द की ओर आते हैं। यह शब्द बहुत ही लम्बे समय से प्रचलित है। बुद्ध सामान्य लोगों को बहुजन शब्द से संबोधित करते थे। बुद्ध ने समस्त प्राणि जगत के लिए, उनके आपसी संबंधों में और उनके क्रिया-कलापों में असीम करुणा और अहिंसा की बात की। अतः बहुजन शब्द सामान्य जन जीवन में निहित करुणा की चेतना को इंगित करता है। उनके अन्दर सामाजिक न्याय के तत्व को दिखाता है। जाति, वर्ण, वर्ग, राष्ट्र आदि शब्द इस तत्व, इस भाव को नहीं पकड़ पाते

हैं। बहुजन शब्द हमारी चेतना, हमारे धर्म के इस पक्ष की पहचान है और यह भारत के लोगों को विश्व के अन्य सभी लोगों से अलग बनाता है। अतः बहुजन-समाज पद न सिर्फ इन लोगों की अन्दरूनी ताकत यानि कि लोकविद्या, का द्योतक है बल्कि, उनके धर्म का भी द्योतक है।

लोकविद्या समाज एक धार्मिक समाज है। बुद्ध, बसवेश्वर, गुरु गोविंद सिंह, ज्ञानेश्वर, कबीर, नारायण गुरु इत्यादि की एक लम्बी संत परंपरा है, जिसने इस धार्मिक चेतना से न्याय त्याग और भाईचारा के बीज इस उर्वर भूमि में डालकर इन विचारों को पुष्पित और पल्लवित किया। उन्होंने समाज परिवर्तन के लिए इस चेतना को जगाया। गांधीजी ने इसी भावना को वैष्णव जन होने का आधार बताया और कहा कि वैष्णव जन समाज अन्याय के प्रति सचेत होते हैं, और सामान्य जन को इस पीड़ा से मुक्त करने के लिए सतत संघर्षशील रहते हैं। बहुजन-समाज पद इसी बृहत समाज को चिन्हित करता है और इस समाज की शक्ति यानी कि लोकविद्या और इस समाज में अन्तर्निहित धार्मिक चेतना को उजागर करता है। आज लोकविद्या समाज को अपनी विद्या की इस शक्ति का भान नहीं है। अतः हमें अपनी पुरजोर ताकत से इस चेतना को जगाना होगा और इसके लिए अनेक प्रकार के प्रयास करने होंगे। कला, संगीत, भजन, नाटक, सामाजिक क्रिया कलाप आदि द्वारा बहुजन चेतना को केन्द्र में लाना होगा। ताकि, बहुजन समाज सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की एक नई परिकल्पना की ओर, यानी कि स्वराज्य की ओर बढ़े।

### स्वराज्य

बहुजन समाज देश में चौतरफा फैले अनेक समुदायों से बना है। इसी समुदायिक परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति की पहचान, उसके अधिकार और कर्तव्य परिभाषित होते हैं। समुदाय और व्यक्ति समाज में दो पूरक छोर हैं। मानव चेतना की इस समझ से व्यक्ति के स्वधर्म और इसके समाज-धर्म के संबंध ठोस रूप से परिभाषित होते हैं और यह चेतना यकीनन धार्मिक स्वरूप में है। कम से कम अंग्रेजी राज और आधुनिक समाज की भारत में स्थापना के पहले के समाज के विषय में तो कहा ही जा सकता है कि जीवन के प्रत्येक पक्ष में समुदाय धार्मिक चेतना के द्वारा एक दूसरे में गुंथे हुए थे। चाहे यह उनके जीवन को जीने के तरीकों की बात हो, चाहे उनके परस्पर आचार

व्यवहार की बात हो, चाहे उनके आपसी झगड़ों को सुलझाने के तरीकों की बात हो इन सभी में परस्परता के आधार पर एक धार्मिक दृष्टिकोण था।

स्वराज्य इन समुदायों के सौहार्द पूर्ण और स्वायत्त विकास की कहानी है। जैसे-जैसे समुदायों का विकास होता है, उनके उत्पादन में परिवर्तन आते हैं। और जाति, उपजाति आदि लोकविद्या आधारित उप समुदायों के आपसी उत्पादन संबंधों में भी परिवर्तन आते हैं। इन सभी समुदायों से बने समाज में ऊंच-नीच के संबंध होते हैं, जो जाति आधारित हो, या लिंग (पुरुष-स्त्री) आधारित हो, या शहरी-ग्रामीण के बीच के हों या ग्रामीण-बनवासियों के आधार पर हों। इससे व्यक्तियों और उप-समुदायों के अपने-अपने स्वधर्मों के मध्य अकसर टकराव और विवाद की स्थितियां उत्पन्न होती हैं। इनसे समुदाय के अस्तित्व और स्थायित्व पर आँच आने लगती है।

अंग्रेजी राज के पूर्वकाल में, बहुजन समाज अपने अंदर के इस अधिकतम (ऊंच-नीच के संबंध) को संभालना जानता था, और इन टकरावों को सुलझाने में हिंसात्मक तरीकों से बचने का प्रयास करता था। इन परिस्थितियों में संतों की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। संत न्याय, त्याग और भाईचारा के मूल्यों की सम्यक व्याख्या द्वारा उन समुदायों के लिए देश काल के अनुसार एक दृष्टि एक नजरिया प्रस्तुत करते रहें, जो समाज को रास्ता दिखाये, आपसी रंजिशों और झगड़ों का समाधान करें, और जरूरत पड़ने पर समुदाय के पोषण और स्थायित्व को बनाये रखने हेतु एक नई समुदायिक पहचान बनाये। इस विषय में देखें तो गुरु गोविन्द सिंह जी का खालसा अभियान और श्री बसवेश्वर जी का वीरशैव आंदोलन प्रमुखता से सामने आते हैं।

ब्रिटिश राज की स्थापना के साथ यह सब मानों की सदा सर्वदा के लिए बदल गया। इस अंग्रेजी राज में पूंजीवादी उत्पादन और वितरण की व्यवस्था आई। समाज में निर्णय लेने के तरीकों का और संघर्ष समाधान के तरीकों का केन्द्रीयकरण हुआ, पश्चिमी मूल्य, विचार और तौर तरीके घर करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि अनेक समुदायों का धर्म छिन्न-भिन्न होने लगा उनकी संस्कृति, एकरसता और साझा पहचान भी टूटने लगी। बहुजन-समाज के अन्दर आपसी झगड़े बढ़ने लगे और उसकी धार्मिक एकजुटता और समग्रता टूटने लगी। बहुजन-समाज बेतरतीब होने लगा उसमें बिखराव आने लगा, और यह प्रक्रिया अभी तक बरकरार है। तो बहुजन-समाज का

आज के संदर्भ में पुनरुत्थान कैसे हो? वह अपनी जीवंतता के साथ अपने आप को अपनी रचनात्मक शक्ति को पुनः कैसे स्थापित करे? निश्चित रूप से इन सवालों के जवाब हासिल करने के लिए आज के संदर्भ में अपनी बहुजन चेतना को पुनर्जीवित करना होगा। और स्वराज्य की अपनी एक नई दृष्टि विकसित करनी होगी। अर्थात् स्वराज्य राजनैतिक परिवर्तन (आज राजनीति के अर्थ में) भर का नाम नहीं है, यह एकजुटता, एकरसता, परस्परता, पहचान की धार्मिक भावना पर आधारित आध्यात्मिकता से लैस होने का कार्य है। निश्चित ही यह कार्य पूंजीवादी बाजार द्वारा चालित विध्वंसक और अमानवीय प्रतिस्पर्धा के जटिल व उलझे हुए जाल में जगह पाने का कार्य नहीं है।

भारत समेत दुनिया के सभी देशों ने पूंजीवादी (उत्पादन, वितरण, राजनीति आदि क्षेत्रों में) व्यवस्था को अपना रखा है। सभी देश वैश्विक पूंजीवादी बाजार व्यवस्था में सक्रिय सहभागी हैं। पश्चिमी ज्ञान तंत्र में शिक्षित चिंतक, अर्थशास्त्री, राजनैतिक विचारक, इन सभी के सामने साधारण जीवन और जीविका के संकट, मनुष्य के अमानवीकरण एवं जीव जन्तुओं तथा पर्यावरण के विनाश का संकट, संसाधनों का संकट, एक दूसरे को नोच खाने की प्रवृत्ति (प्रतिस्पर्धा) का संकट, एवं तरह-तरह के हिंसात्मक संघर्षों और युद्धों का संकट ये सभी संकट मुंह बाये खड़े हैं और इन विचारकों, बौद्धिक मनीषियों के पास कोई समाधान है, ऐसा नहीं दिखता है।

अतः बहुजन-स्वराज्य के लिए नये आंदोलन की आवश्यकता है, जो बहुजन-समाज की चेतना के पुनर्जीवन का ही एक स्वरूप है। यह आंदोलन न्याय, त्याग, और भाईचारा को आज के संदर्भ में आधार बनाकर धार्मिक भावना को समाज में स्थापित करें; ऐसी धार्मिक भावना जो मनुष्यों को एक दूसरे से न्याय, त्याग और भाईचारा के मूल्यों द्वारा जोड़े और उनके जीवन में आमूलचूल बदलाव लाए।

यह स्वराज्य कैसे आये? इसके लिए बहुजन-समाज के अन्दर आधार विचारों का निर्बाध आदान प्रदान होते रहना होगा। विचारों का आदान प्रदान और मंथन घर परिवार से शुरू हो। फिर स्थानीय पंचायत तथा और आगे की इकाईयों तक सिलसिलेवार चले। भारत के गाँवों में पंचायत व्यवस्था बहुत लम्बे समय से चली आ रही है। आज भी समुदाय आधारित अनेक पंचायतें देश भर में हैं-जैसे कि जाट समाजों की खाप पंचायतें, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र और तेलंगाना में गोंड समुदाय की

पंचायतें जो अभी भी समुदायों के अन्दर और विभिन्न समुदायों के मध्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये पंचायतें वह स्थान हैं जहाँ आपसी परामर्श से झगड़ों का समाधान होता है और अपने सामाजिक हितों के अनेक कार्यों पर विचार और क्रियान्वयन की योजनाएं बनाई जाती हैं।

धार्मिक चेतना के अन्तर्गत स्थानीय पंचायतों में सतत विचार विमर्श चलते रहना होगा, और इसी से स्वराज्य की एक नई दृष्टि का जन्म होगा। ऐसी सक्रिय पंचायतों से ही प्रमुख राजनैतिक संरचना का जन्म होगा, जो एक टिकाऊ सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तन यानि स्वराज की एक नई दृष्टि, एक नई संकल्पना का मूर्त रूप होगा.



## 1767-1774 में भारत का बहुजन-समाज चेंगलपट्टू दस्तावेज

-जी. शिवराम कृष्णन

[अंग्रेजों के आने से पूर्व भारतीय समाज और राजनीति पर यह एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है, जिसे इस देश के बहुजन-समाज और समाज परिवर्तन के कार्यकर्ताओं को जानना ज़रूरी है। विद्या आश्रम के सदस्य डॉ. जीएसआर कृष्णन, बेंगलुरु द्वारा अंग्रेजी में लिखे लेख के आधार पर इसके महत्वपूर्ण अंशों का हिंदी में अनुवाद कर नीचे दिया गया है.]

ईस्ट इण्डिया कंपनी के द्वारा 1767 से 1774 के बीच एक अंगरेज इंजीनियर, मेजर क्रिश्चियन बर्नार्ड को तमिलनाडु के लगभग 2000 गाँवों के आँकड़े एकत्रित करने की जिम्मेदारी सौंपी गई। ये आँकड़े मद्रास (चेन्नई) शहर के चारों ओर स्थित चेंगलपट्टू ज़िले से संबंधित हैं। 1980 के दशक के मध्य में इतिहासकार धर्मपाल ने इन्हें चेन्नई के एमोर स्थित तमिलनाडु राज्य अभिलेखागार से खोज निकाला। ये दस्तावेज 'चेंगलपट्टू अभिलेख' के नाम से जाने जाते हैं।

चेंगलपट्टू ज़िला 1763 में इस क्षेत्र के तत्कालीन शासक, वल्लाजा के नवाब, मोहम्मद अली द्वारा अंग्रेजों (ईस्ट इंडिया कंपनी) को जागीर(उपहार) के रूप में दिया गया था। अंग्रेजों ने तुरंत उस क्षेत्र का भौगोलिक-प्राकृतिक सर्वेक्षण शुरू कर दिया। कंपनी ने मेजर क्रिश्चियन बर्नार्ड को दुभाशी चेंगलवरया मुदलियार की सहायता से 2138 गांवों वाले पूरे क्षेत्र का सर्वेक्षण करने के लिए कहा गया। इनमें से अधिकांश गांव आज तिरुवल्लूर और कांचीपुरम जिलों का हिस्सा हैं। उसी अवधि का एक तमिल भाषा में लिखा मूल डेटा जो अधिक विस्तृत था; तंजावुर स्थित तमिल विश्वविद्यालय के पास भी पाया गया।

**चेंगलपट्टू जिला :** उस समय, चेंगलपट्टू जिला 180 किलोमीटर लंबा और 80 किलोमीटर चौड़ा था। इसे 15 सीमाई (तालुका) में विभाजित किया गया था, जिन्हें आगे 250 नाडु (भौगोलिक क्षेत्र) या होबली(प्रशासनिक क्षेत्र) में विभाजित किया गया था। हालाँकि बर्नार्ड के सर्वेक्षण में जिले के 2138 गाँव शामिल थे, उनमें

से केवल 1910 (89%) के ही आँकड़े प्राप्त हो पाए हैं। नीचे हम इसके कुछ महत्वपूर्ण आँकड़े दे रहे हैं।

### 1. ज़मीन:

- कुल ज़मीन 7.8 लाख कनीस (एक कनी लगभग 1.322 एकड़ या 5349 वर्ग गज के बराबर) इसमें 1.2 लाख कनीस बंजर भूमि (15.4%) है।
- कुल भूमि के लगभग 1/6 भाग पर वन हैं, जबकि 1/8 भाग पर जल निकाय और अन्य सिंचाई स्रोत हैं। जंगल, नदियाँ, तालाब, घर, बंजर भूमि आदि जिले के कुल भूमि क्षेत्र का लगभग आधा हिस्सा बनाते हैं।
- सिंचाई स्रोत मुख्यतः झीलें हैं। झीलों के अलावा, पानी के अन्य स्रोत जैसे तालाब, नहरें, कुएँ आदि भी थे। ये सिंचाई सुविधाएँ पूरे जिले में समान रूप से पाई जाती थीं। कुल 1910 गाँवों में से 1750 में कम से कम एक प्रमुख सिंचाई स्रोत (91.6%) था।
- आबादी वाला क्षेत्रफल लगभग 24,000 कनीस है, जो कुल क्षेत्रफल का लगभग 1/30वाँ भाग है। घरों के अलावा, आबादी वाले क्षेत्र में गलियाँ, छत्रम जैसे सार्वजनिक स्थान और छोटे जंगल शामिल हैं।
- कृषि योग्य भूमि लगभग 3.8 लाख कनीस थी, जिसमें से 2.4 लाख कनीस सिंचित थी और इसे ननजाई भूमि कहा जाता था। 1.4 लाख कनीस असिंचित थी और इसे पुंजई भूमि कहा जाता था।
- खेती योग्य और सिंचित भूमि दोनों ही वर्ष हर वर्ष बदलती रही। सर्वेक्षण की अवधि के दौरान, 2.7 लाख कनीस भूमि खेती योग्य थी। इनमें से 1.8 लाख कनीस सिंचित और 90,000 कनीस असिंचित थे।
- खेती योग्य कुल भूमि का एक-चौथाई हिस्सा मन्यम या लगान-मुक्त/कर-मुक्त भूमि के रूप में वर्गीकृत किया गया था। मन्यम वह भूमि होती है जो किसी शासक या सत्ताधारी प्राधिकारी द्वारा विभिन्न संस्थाओं, कार्यों, व्यक्तियों

आदि को सौंपी जाती है ताकि उन्हें करों के रूप में राजस्व प्राप्त हो, जो आमतौर पर शासकों को प्राप्त होता था। ये मन्यम (जिन्हें देश के अन्य भागों में माफ़ी, इनाम कहा जाता है) भारत भर में खेती की जाने वाली कुल भूमि का 30 से 50 प्रतिशत तक थे। जब अंग्रेजों ने भारत के विभिन्न हिस्सों पर नियंत्रण किया, तो उन्हें यह देखकर बहुत गुस्सा आया कि हर जगह बड़ी मात्रा में ज़मीन कर या लगान से मुक्त थी। उन्होंने देश के विभिन्न हिस्सों में कर-मुक्त ज़मीनों को छाँटने या खत्म करने के लिए इनाम आयोग भी स्थापित किए।

## 2. बहुजन-समाज :

- 1910 गाँवों में से 1550 (81.2%) गाँवों में लोग रहते थे और 62,500 घर थे। लगभग आधे घर खेती-बाड़ी करने वालों के थे, जिनमें 7400 वेल्लाला घर, 9700 पल्ली, 11000 पराया, 2400 रेड्डी और 2600 चरवाहे शामिल थे।
- शिल्प और अन्य गैर-कृषि व्यवसायों में लगे लोगों की संख्या काफी थी। कांचीपुरम और मदुरंतकम तालुकों में कुल घरों में से लगभग 13 से 15% घर विभिन्न शिल्प और व्यवसायों में लगे हुए पाए गए।
- मुख्य रूप से 4000 कुशल बुनकरों के घर थे। शिल्पकारों में से लगभग 50% बुनकर थे। लोहार, चांदी और सुनार के 1200 घर थे। कुम्हारों के 400 घर और मछुआरों के 600 घर थे। इन गाँवों में तेली, ताड़ी बनाने वाले, टोकरी बुनने वाले, बढ़ई, इत्र बनाने वाले, चूना पत्थर पीसने वाले या चुन्म बनाने वाले आदि कई अन्य शिल्पकार भी रहते थे।
- व्यापार और अन्य व्यापार संबंधी व्यवसायों में लगे लोगों की संख्या लगभग 4000 थी।
- विभिन्न प्रकार की सेवाओं और सांस्कृतिक, धार्मिक सेवाओं में लगे लोग गाँवों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थे। यहां 650 नाई के घर, 850 धोबी के घर,



गांव के लेखाकारों के 1650 घर, पलायक्करा (स्थानीय राजनीतिक प्राधिकारी) के 2200 घर और चिकित्सकों के 150 घर थे।

- ब्राह्मणों के 6600 घर थे मंदिर सेवाओं में लगे लोगों के 1050 घरों के अलावा ब्राह्मणों के 6600 घर थे। देवदासियों के 600 घर थे। इस प्रकार, विभिन्न सेवाओं में लगे लोग कुल घरों (14,500) का लगभग 23% थे। अभिलेखों में इन गांवों में लगभग 750 मुस्लिम घरों (जनसंख्या का 1.2%) का उल्लेख है।

### 3. उत्पादन :

- दक्षिण भारत के कुछ अन्य उपजाऊ क्षेत्रों, जैसे कृष्णा गोदावरी डेल्टा या कावेरी डेल्टा के विपरीत, इस जिले को कम उपजाऊ माना जाता है। फिर भी चेंगलपट्टू के किसान बड़ी मात्रा में धान और अन्य अनाज पैदा करते हैं।
- उत्पादन या उत्पादकता के संबंध में 1500 गांवों की जानकारी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लगभग 2 लाख कनीस के लिए खाद्यान्न उत्पादन की गणना कर सकते हैं।
- मोटा अनुमान यह है कि इन दो लाख कनीस भूमि से लगभग 20 लाख कलम (1 कलम=लगभग 4 किलो) का उत्पादन हुआ।
- कुल मिलाकर, यह 45,000 घरों के लिए प्रति घर लगभग 5.5 टन खाद्यान्न के बराबर है।
- लगभग 65 गांवों की औसत उपज 5000 कलम है, जो चेंगलपट्टू में उगाए जाने वाले कुल खाद्यान्न का छठा हिस्सा है। ये गांव जिले के एक औसत गांव से दोगुना उत्पादन कर रहे थे। 65 उच्च उपज वाले गांवों में से कुछ ऐसे हैं जो प्रति कानी 35 कलम यानी लगभग 8.1 टन प्रति हेक्टेयर उत्पादन करते हैं।

#### 4. आवंटन :

- चेंगलपट्टू अभिलेखों का सबसे महत्वपूर्ण पहलू विभिन्न प्रशासनिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक और सामाजिक सेवाओं आदि के लिए अनाज के आवंटन के बारे में है। ये आवंटन दो तरीकों से किए जाते हैं
- **पहला, मन्यम :** कुछ भूमि से प्राप्त राजस्व को कई कार्यों, संस्थानों, सेवाओं को आवंटित करना; उन्हें मन्यम कहा जाता था। जिले के 1650 गांवों के लिए मन्यम आवंटन के आंकड़े उपलब्ध हैं। मन्यम जिले की कुल कृषि योग्य भूमि का लगभग एक-चौथाई है।
- **दूसरा, स्वतंत्रम :** स्वतंत्रम आवंटन कुल उत्पादन का लगभग 30% होता था।
- ये आवंटन तीन चरणों में किए जाते थे: पहला फसल कटाई के बाद और गहाई से पहले; दूसरा खलिहान में ही गहाई के बाद; और तीसरा कलमों में अनाज नापने के बाद।
- दस्तावेजों में लगभग सौ व्यक्तियों, संस्थाओं, सेवाओं या पदाधिकारियों का उल्लेख है जिनके लिए आवंटन किए गए थे। औसतन, प्रत्येक गाँव 30 से 40 आवंटन प्रदान करता था। यद्यपि प्रत्येक गाँव के भीतर व्यक्तियों, सेवाओं आदि को अनाज का आवंटन किया जाता था, गाँव के बाहर के व्यक्तियों या संस्थाओं को भी आवंटन किए जाते थे। अनाज आवंटन एक पैटर्न का पालन करता था - उदाहरण के लिए, सिंचाई गतिविधि को गाँव की कुल उपज का दो से तीन प्रतिशत आवंटन प्राप्त होता था। गांव के भीतर और बाहर दोनों जगह मंदिरों और सांस्कृतिक केंद्रों को कुल उत्पादन का 4% प्राप्त हुआ। गांव के लेखाकार को लगभग 2.5% प्राप्त हुआ जबकि बड़े राजनीतिक अधिकारियों को कुल उत्पादन का लगभग 4% प्राप्त हुआ।
- चेंगलपट्टू जिले में कई सांस्कृतिक संस्थानों को कई गांवों से मन्यम के माध्यम से समर्थन और रखरखाव किया गया था। लगभग 17 प्रमुख सांस्कृतिक केंद्रों

को सौ से अधिक गांवों से मन्यम प्राप्त हुए। प्रसिद्ध कांचीपुरम वरदराज स्वामी मंदिर उनमें से एक है। इसे 1250 गांवों से मान्यम प्राप्त हुए, जो जिले के कुल अनाज उत्पादन का 0.5 प्रतिशत था। सिंगा पेरुमल मंदिर, मारुतेश्वर मंदिर, श्रीपेरंबदूर मंदिर, वेदगिरीश्वर मंदिर आदि को 200 से अधिक गांवों से आवंटन प्राप्त हुआ। महान मंदिरों के अलावा, कई सेवा संगठनों और प्रतिष्ठित विद्वानों को जिले भर से खाद्यान्न का आवंटन प्राप्त हुआ। कांचीपुरम के शंकराचार्य इसी तरह सैन थोम के पीरजादा को 100 से अधिक गांवों से अनाज का आवंटन प्राप्त होता था। बहुत प्रसिद्ध देवदासियां, विद्वान ब्राह्मण, जैन मुनि और फकीर ऐसे अनाज आवंटन प्राप्त करते थे। प्रसिद्ध मंदिर में दैनिक पूजा के लिए फूल प्रदान करने वाले पुष्प उद्यानों को अनाज आवंटन प्राप्त होता था। मंदिरों और मठों से जुड़े हाथियों और उनके महावतों को कई गांवों से आवंटन प्राप्त होता था।

उपरोक्त आंकड़ों का एक उल्लेखनीय पहलू यह है कि छोटी-छोटी बातों पर भी बहुत ध्यान दिया जाता है, जैसे कि साल भर मंदिर के दीयों को जलाए रखने के लिए तेल की व्यवस्था करना, या गांव के त्योहारों और समारोहों के दौरान राहगीरों को पीने का पानी या छाछ उपलब्ध कराने की व्यवस्था करना। लोगों का सांस्कृतिक जीवन समृद्ध और समावेशी प्रतीत होता है।

इस प्रकार चेंगलपट्टू के अभिलेखों द्वारा बहुजन-समाज की यह चित्रित तस्वीर मात्र 250 वर्ष पहले की है जो बहुजन-समाज के कारगर संगठन और कुशल संचालन की क्षमताओं का संकेत करती है। ये वितरित सत्ता के विचार से संगठित समाज का ही चित्र है, जिसे हम स्वराज के नाम से जानते हैं।



**लेखक परिचय**

1. सुनील, वाराणसी : किसान आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्ता, लोकविद्या आन्दोलन के प्रणेता और विद्या आश्रम, सारनाथ, वाराणसी के संस्थापक.
2. चित्रा सहस्रबुद्धे, वाराणसी : राष्ट्रीय संयोजक लोकविद्या जन आन्दोलन, समन्वयक विद्या आश्रम (संस्थापक सदस्य) सारनाथ, वाराणसी
3. लक्ष्मण प्रसाद, सलारपुर वाराणसी: शोषित समाज दल के कार्यकर्ता, किसान आन्दोलन और लोकविद्या जन आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्ता, विद्या आश्रम, सारनाथ के संस्थापक सदस्य और व्यवस्थापक.
4. फ़ज़लुर्हमान अंसारी, वाराणसी : लोकविद्या जन आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्ता और बुनकर साझा मंच के संयोजक
5. प्रेमलता सिंह, वाराणसी : नारी हस्तकला उद्योग समिति की सचिव, लोकविद्या जन आन्दोलन की सक्रिय कार्यकर्ता, संपादक कारीगर नजरिया.
6. पारमिता, वाराणसी : लोकविद्या जन आन्दोलन की सक्रिय कार्यकर्ता, संयोजक नागरिक समाज, वाराणसी.
7. रामजनम, भगवानपुर, वाराणसी: लोकविद्या जन आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्ता, संयोजक नागरिक समाज वाराणसी
8. हरिश्चंद्र केवट, मिर्जापुर : लोकविद्या पत्रकार, माँ गंगाजी निषाद सेवा समिति के सचिव
9. रामजी सिंह, वाराणसी : अध्यक्ष, किसान सभा, वाराणसी
10. विजय जावंधिया, नागपुर : किसान आन्दोलन के नेता, शेतकरी संघटना के पूर्व अध्यक्ष, अंतर्राज्यीय किसान आन्दोलन समन्वय समिति के पूर्व अध्यक्ष
11. रामनाथन कृष्ण गांधी, झाँसी : किसान आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्ता, अंतर्राज्यीय किसान आन्दोलन समन्वय समिति के पूर्व सचिव, फिजिक्स के अवकाश प्राप्त प्रोफ़ेसर.
12. बी. कृष्णरजुलु, मैसूरु: किसान आन्दोलन (कर्णाटक राज्य रैयतु संघ) के सक्रिय कार्यकर्ता लोकविद्या जन आन्दोलन के पूर्व राष्ट्रीय संयोजक और विद्या आश्रम के संस्थापक सदस्य तथा फिजिक्स के अवकाश प्राप्त प्रोफ़ेसर.

13. अरुण कुमार, बलरामपुर, जौनपुर : किसान , गांधीवादी कार्यकर्ता, 1974-75 के जे.पी आन्दोलन के चर्चित व्यक्तित्व, पूरी इमरजेंसी जेल में, लोकतंत्र सेनानी .
14. राम दुलार, वाराणसी : अधिवक्ता, शोषित समाज दल के कार्यकर्ता, .
15. एकता सिंह, वाराणसी: लोकविद्या जन आन्दोलन और पर्यावरण आन्दोलन की सक्रिय कार्यकर्ता और लोकविद्या आश्रम, सिंगरौली के संस्थापक सदस्य.
16. रवि शेखर, वाराणसी : लोकविद्या जन आन्दोलन और पर्यावरण आन्दोलन की सक्रिय कार्यकर्ता, लोकविद्या आश्रम, सिंगरौली के संस्थापक सदस्य.
17. गिरीश सहस्रबुद्धे, नागपुर : किसान आन्दोलन (शेतकरी संघटना) के सक्रिय कार्यकर्ता लोकविद्या जन आन्दोलन, महाराष्ट्र के संयोजक, विद्या आश्रम के संस्थापक सदस्य और फिजिक्स के अवकाश प्राप्त प्रोफेसर.
18. रामजी यादव, वाराणसी, साहित्यकार और मिडियाकर्मी, *गाँव के लोग* पत्रिका के संपादक व प्रकाशक
19. नूर फ़ात्मा, वाराणसी : कवियत्री, सामाजिक कार्यकर्ता और अध्यापिका
20. संजीव दाजी, इंदौर : संयोजक लोकविद्या समन्वय समूह, कला केंद्र के समन्वयक, मेकेनिकल इंजीनियरिंग के अवकाशप्राप्त प्रोफेसर
21. अविनाश झा, दिल्ली : दार्शनिक, लोकविद्या जन आन्दोलन और विद्या आश्रम के सक्रिय साथी, सेंटर फॉर स्टडीऑफ़ डेवलपिंग सोसायटी के पुस्तकालय के अवकाश प्राप्तअध्यक्ष
22. जी. शिवरामकृष्णन, बंगलुरु : लोकविद्या जन आन्दोलन और लोकविद्या वेदिके बंगलुरु के सक्रिय सदस्य, अवकाशप्राप्त समाज शास्त्र के प्रोफेसर
23. अमित बसोले, बंगलुरु : लोकविद्या जन आन्दोलन और विद्या आश्रम के संस्थापक सदस्य, अर्थशास्त्र के प्रोफेसर, प्रेमजी यूनिवर्सिटी, बंगलुरु.



